❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोपादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

श्रीभागवत-पत्रिका

स वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ६ | गौराब्द ४७४, मास—माधव १३, वार—क्षीरोदशायी शनिवार, ३० पौष, सम्वत् २०१७, १४ जनवरी १९६१ | संख्या ७-८

श्रीप्रेमाम्भोज-मरन्दाख्य-स्तवराजः

[श्रील-रघुनाथदास-गोस्वामि-विरचितः]

श्रीराधिकायै नमः

महाभावोज्ज्वलच्चिन्ता-रत्नोद्भावित-विग्रहां ।
सखी-प्रणय-सद्गन्धवरोद्वर्त्तन सुषमाम् ॥ १ ॥

कारुण्यामृत-वीचीभिस्तारुण्यामृत-धारया ।
लावण्यामृत-वन्याभिः स्नपितां ग्लपितेन्दिराम् ॥ २ ॥

ह्री-पट्टवस्त्र-गुह्याङ्गीं सौन्दर्य-घुसृणाञ्चितां ।
श्यामलोज्ज्वल-कस्तुरी-विचित्रित-कलेवरम् ॥ ३ ॥

कम्पाश्रु-पुलक स्तंभ-स्वेद-गद्गद-रक्तता ।
उन्मादो जाड्यमित्येतै रत्नैर्नवभिरुत्तमैः ॥ ४ ॥

कंठालंकृति-संश्लिष्टां गुणाली पुष्प-मालिनीं ।
धीराधीरात्व-सद्वास-पटवासैः परिष्कृताम् ॥ ५ ॥

प्रच्छन्न-मान-धम्मिल्लां सौभाग्य तिलकोज्ज्वलां ।
कृष्णनाम-यश:श्राव-वतंसोल्लासि-कर्णिकाम ॥ ६ ॥

राग-ताम्बूल-रक्तौष्ठीं प्रेम-कौटिल्य कज्जलां ।
नर्म-भाषित नि:स्यन्द-स्मित-कर्पूर-वासिताम् ॥ ७ ॥

सौरभान्त:पुरे गर्व-पर्यङ्कोपरि लीलया ।
निविष्टां प्रेम वैचित्य-विचलत्तरलाञ्चिताम् ॥ ८ ॥

प्रणय-क्रोध-सच्चोली-बन्ध-गुप्तकृत-स्तनां ।
सपत्नी-वक्त्र-हृच्छोषि-यश:-श्रीकच्छपी रवाम् ॥ ९ ॥

मध्यतारम सखी-स्कन्ध-लीला-न्यस्त कराम्बुजां ।
श्यामां श्याम-स्मरामोद-मधुली परिवेशिकाम् ॥१०॥

स्वां नत्वा याचते धृत्वा तृणं दन्तैरयं जन: ।
स्वदास्यामृत-सेकेन जीवयामुं सुदु:खितम् ॥११॥

न मुञ्चेच्छरणायातमपि दुष्टं दयामय: ।
अतो गन्धर्विके ! हा हा मुञ्चैनं नैव तादृशम् ॥१२॥

प्रेमाम्भोज-मरन्दाख्यं स्तवराजमिमं जन: ।
श्रीराधिका-कपा-हेतुं पठंस्तद्दास्यमाप्नुयात् ॥१३॥

अनुवाद—

महभाव-स्वरूप उज्ज्वल चिन्तारत्न द्वारा जिनका श्रीअङ्ग अतिशय पवित्र है एवं सखियोंके प्रणयरूप कुंकुमादि द्वारा जो परम सुन्दर कान्ति धारण किये हैं, ॥१॥

पूर्वाह्नमें कारुण्य अर्थात् दयालुता-रूप अमृत-तरंगमें, मध्याह्नमें तारुण्य अर्थात् यौवनरूप अमृत-धारामें और संध्याकालमें लावण्य अर्थात् कान्तिरूप अमृतकी बाढ़में स्नान कर जो श्रीमती राधिका लक्ष्मी देवीको भी लज्जित कर रही हैं, ॥२॥

जिनके अङ्ग लज्जारूप पट्टवस्त्र द्वारा आच्छादित हैं, जो सौन्दर्यरूप कुंकुम द्वारा सुशोभित हैं एवं श्यामवर्ण उज्ज्वल शृंगार-रसरूप कस्तुरीसे जिनका कलेवर चित्रित है, ॥३॥

जिन्होंने, कम्प, अश्रु, पुलक स्तंभ,स्वेद, गद्गद्-भाव, रक्तता, उन्माद और जड़ता—इन नौ प्रकारके रत्नोंद्वारा निर्म्मित अलंकार धारण किये हैं, सौन्दर्य और माधुर्य आदि गुण-समूह ही जिनकी पुष्पमाला-स्वरूप है एवं धीराधीरात्व भावरूप सद्गन्धको ही जो कर्पूर आदिके रूपमें व्यवहार करती हैं, ॥४-५॥

प्रच्छन्न मान ही जिनका बँधा हुआ जूड़ा (केश-पाश) है, जो सौभाग्यरूप तिलक द्वारा परमोज्ज्वल हैं, एवं श्रीकृष्णका नाम और यश श्रवण ही जिनके कर्णभूषण हैं, ॥६॥

अनुरागरूप ताम्बूलकी लाल ईसे जिनके होठ रञ्जित हैं, प्रेम-कौटिल्य ही जिनका कज्जल है,उपहास वाक्य बोलना ही जिनका हेतु है, वैसे ही मधुर-हास्य रूप कर्पूर द्वारा जो सुवासित हैं, ॥७॥

सौरभ अर्थात् कीर्त्ति-स्वरूप अन्त:पुरमें जो गर्व-रूप पलंगके ऊपर आनन्दसे लेट कर विप्रलंभरूप चंचल तरल अर्थात् हारके बीचकी मणिद्वारा सुशोभित हैं, ॥८॥

सप्रणय क्रोधसे उत्पन्न लालिमारूप कंचुकी (स्तन-

को ढकनेवाली चोली) द्वारा जिन्होंने अपने स्तनोंको ढक रखा है एवं सपत्नियोंके कुटिलतम वदन और हृदयका शोषण करनेवाली यशःश्री जिनकी उत्तम कच्छपी अर्थात् वीणा-स्वर है, ॥९॥

मध्यता अर्थात् यौवनरूप अपनी सखीके कंधे पर जिन्होंने अपने लीलारूप करकमलोंको रखा है, जो श्यामा अर्थात् विशेष गुणोंवाली हैं तथा जो शृंगार-रस द्वारा कन्दर्प-मत्तारूप मधुका परिवेशन कर रही हैं, ॥१०॥

मैं दाँतोंके नीचे तृण धारण कर (दीनतापूर्वक) प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि वे श्रीमती राधिका कृपापूर्वक मुझ सुदुःखित व्यक्तिको अपनी दासतारूप अमृत प्रदान कर जीवित करें ॥११॥

हे गान्धर्विके ! जब दयालु व्यक्ति शरणागत दुष्ट-जनका भी परित्याग नहीं करते, तब आप भी इस आश्रित दुष्ट व्यक्तिका त्याग न करें ॥१२॥

जो व्यक्ति श्रीराधाकी कृपाके हेतु स्वरूप इस "प्रेमाम्भोज-मरन्द" नामक स्तवराजका पाठ करते हैं, वे श्रीराधिकाका दास्य प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं ॥१३॥

श्रीरामानुजाचार्य

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ६, संख्या ५-६, पृष्ठ १०५ से आगे]

इधर यादवाचार्य अपनी शिष्य-मण्डलीके साथ विंध्याचल पर्वतको पार कर प्रयाग पहुँचे और एक मास तक त्रिवेणीमें स्नान किये। इन्हीं दिनों जब कि वे लोग स्नान कर रहे थे, जलके भीतर गोविन्दको एक शिवलिंग प्राप्त हुआ। उन्होंने उस शिवलिंगको लाकर यादवाचार्यको दिखलाया और बड़ी सावधानी-से उसे अपने साथ लाये। घर पहुँच कर अपने गाँवमें उस शिवलिंगकी स्थापना कर वे नियमित रूपसे उसकी पूजा करने लगे।

जब यादवाचार्यने काँचीपुरी लौट कर यह सुना कि रामानुज उनसे पहले ही सकुशल लौट आये हैं, तब उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उनकी सारी आशा विफल हो गयी। वे पुनः रामानुजको फँसाने-का उपाय सोचने लगे। उन्होंने रामानुजको बुलाया और ऊपरसे बनावटी स्नेह दिखलाकर उन्हें पुनः अपने पास अध्ययन करनेके लिये राजी कर लिया।

उन्हीं दिनों श्रीरंगममें दिव्यसुरि श्रीयामुनाचार्य निवास करते थे। उस समय वे अपने एक योग्य उत्तराधिकारीकी खोज कर रहे थे। इस कार्यके लिये उन्होंने अपने अनेक शिष्योंको लगा रखा था, जो देशके विभिन्न स्थानोंमें अपने गुरुका एक योग्य उत्तराधिकारी ढूढ़ रहे थे। इस खोजके फल-स्वरूप श्रीयामुनाचार्यने श्रीरामानुजकी बड़ी प्रशंसा सुनी। उन्होंने स्वयं अपनी आँखोंसे रामानुजको देखना चाहा। इसलिये एक दिन छिप कर वे कांचीपुरी पहुँचे। उस समय यामुन मुनिके शिष्य कांचीपूर्ण श्रीवरदराजके सेवाधिकारी थे। गुरुके आगमनकी बात सुन कर कांचीपूर्णने बड़े आदर-सत्कारके साथ श्रीयामुनाचार्यको श्रीवरदराजके मन्दिरमें ले गये। श्रीयामुनाचार्य श्रीवरदराजका दर्शन कर कांचीपूर्णके साथ लौट रहे थे। दैववश उसी रास्तेसे श्रीरामानुज भी यादवाचार्यके साथ वरदराजके दर्शनोंके लिये जा रहे थे। कांचीपूर्णने श्रीयामुनाचार्यको दिखला दिया कि ये ही श्रीरामानुज हैं। रामानुजको देखकर श्री-यामुनाचार्यका हृदय करुणासे भर गया। वे श्रीवरद-राजसे रामानुजके कल्याणके लिये प्रार्थना किये। उस

समय उन्होंने प्रकाश्यरूपमें रामानुजके ऊपर कृपा नहीं की।

कुछ ही दिनोंमें श्रीयामुनाचार्य श्रीरंगम लौट आये। श्रीरंगमका मन्दिर वर्त्तमान त्रिचनापल्ली जिलेमें कोलिरन नदीके दक्षिण तट पर स्थित है। कोलिरनको कावेरी भी कहते हैं। कांचीपुरीसे श्रीरंगम लगभग बीस योजन (१६० मील) दक्षिणमें है। श्रीरंगम पहुँच कर उन्होंने अपने शिष्य पूर्णाचार्यको कांचीपुरी भेजा। पूर्णाचार्य कांची पहुँचकर गुरुकी आज्ञानुसार श्रीवरदराजके मंदिरमें यामुनाचार्य के द्वारा रचित हृदयाकर्षक 'स्तोत्ररत्न' का मधुर स्वर से नियमित रूपमें पाठ करने लगे। रामानुज उस अपूर्व स्तोत्रका पाठ श्रवण कर बड़े ही मुग्ध हुए। उन्होंने पूर्णाचार्यसे उस स्तोत्रके रचयिताके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। पूर्णाचार्यने श्रीयामुनाचार्यका सारा वृतांत रामानुजको सुनाया। रामानुज यामुन मुनि के दर्शनोंके लिये व्याकुल हो उठे। पूर्णाचार्य भी श्रीरामानुजको साथ लेकर रंगक्षेत्रकी ओर चल पड़े।

इधर अखिल ब्रह्माण्डपति श्रीरंगनाथने सोचा कि श्रीयामुनाचार्य और श्रीरामानुजका एक साथ रहना ठीक नहीं है, इससे लीला-विभूतिकी हानि होगी। ऐसा सोच कर उन्होंने अपने पुजारीसे श्रीयामुनाचार्यको सम्बोधन कर कहा—'हे यति श्रेष्ठ! आज मैं तुम्हें अपना परम-पद प्रदान कर रहा हूँ, तुम आज ही भू-प्रकट-लीला समाप्त कर शुभ प्रयाण करो।'

इसी समय रामानुज पूर्णाचार्यके साथ कावेरीके तट पर उपस्थित हुए। और वहाँ पर अनेक ब्राह्मण और वैष्णवोंकी भीड़ देख कर उन लोगोंसे भीड़ होनेका कारण पूछा। उन लोगोंने श्रीयामुनाचार्यके अप्रकट होनेकी बात बतलायी। इस हृदय-विदारक शोक संवादको सुनकर रामानुज बड़े दुःखी हुए। उनका सारा उत्साह जाता रहा।

रामानुजको इस प्रकार दुःखी देख कर पूर्णाचार्य अपनेको किसी प्रकार संयत कर बोले—महात्मा रामानुज! देखिये, ब्राह्मणगण श्रीगुरुदेवके पवित्र कलेवरका कृत्य संपादन कर रहे हैं; हमें उससे पहले ही वहाँ पहुँचना आवश्यक है।' ऐसा कह कर वे रामानुजको साथ लेकर श्रीयामुन मुनिके पवित्र कलेवरके निकट पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही रामानुजके धैर्यका बाँध टूट गया। वे विलाप करते-करते बोले—'मुझ जैसा दुर्भागा व्यक्तिके लिये ऐसे महापुरुषका दर्शन पाना दुर्घट है। इसीलिये श्रीयामुन मुनिने मेरे उपस्थित होनेसे पहले ही अपने लौकिक शरीरका त्याग कर दिया। हे यामुनाचार्यके कृपापात्रों! आचार्य की ये तीन अंगुलियाँ इस प्रकार टेढ़ी क्यों हैं? क्या ये आचार्यके जन्मसे ही इस प्रकार हैं या अभी-अभी इस प्रकार हुई हैं?' रामानुजके प्रश्नको सुन कर वहाँके उपस्थित वैष्णवोंने कहा—'ये अंगुलियाँ अभी-अभी टेढ़ी हुई हैं, हमने इससे पूर्व कभी भी इनको इस प्रकार टेढ़ी नहीं देखा था। हमें तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इन अंगुलियोंके इस प्रकार टेढ़ी होने में कुछ-न-कुछ गूढ़ रहस्य है और आप उसे जानते हैं। कृपया इस रहस्यको हमारे सामने प्रकट करें।'

उन लोगोंकी बात सुनकर रामानुजने उपस्थित जन समूहके सामने प्रकाश्य रूपमें प्रतिज्ञा करते हुए कहा—(क) 'मैं श्रीवैष्णव मतमें स्थित रह कर अज्ञान मोहित जीवोंको पंच संस्कार-सम्पन्न, द्राविड़-आम्नाय (द्राविड़ गुरु-परम्परा द्वारा स्वीकृत वेद-वाणी) में पारदर्शी और सर्वदा प्रपत्तिधर्म (शरणागति-धर्म) का पालन करनेवाला बनाऊँगा।' इतना कहनेके साथ ही श्रीयामुनाचार्यकी तीन टेढ़ी अंगुलियोंमें से एक सीधी हो गयी। धर्मवीर रामानुजने दूसरी प्रतिज्ञा की—(ख) 'सांसारिक जीवोंके कल्याणके लिये मैं परम-तत्त्व संग्रहपूर्वक वेदान्त-सूत्रके 'श्रीभाष्यकी' रचना करूँगा। इस बार दूसरी अँगुली भी सीधी हो गयी। रामानुजने तीसरी प्रतिज्ञा करते हुए कहा—'करुणावरुणालय श्रीपराशर ऋषिने जीव और ईश्वर-तत्त्वका निरुपण कर ईश्वर प्राप्तिके उपायोंको प्रकाश करनेके लिये जिस पुराण-रत्नकी रचना की है, मैं उसका कोष

तैयार करूँगा।' इतना कहना था कि यामुनाचार्यकी तीसरी अँगुली भी सीधी हो गयी। रामानुजको इस अलौकिक शक्तिको देखकर सारा जन-समूह विस्मित हो गया। तत्पश्चात् रामानुज वहाँके उपस्थित वैष्णवोंसे विदा होकर श्रीरंगक्षेत्रमे कांची-पुरी लौट आये। यहाँ आकर उन्होंने महात्मा कांची-पूर्णको श्रीयामुनाचार्यके प्रयाणकी सारे बातें विस्तार पूर्वक बतलायी। कांचीपूर्णने अपने गुरुके उद्देश्यसे विधिपूर्वक महोत्सव आदि किये।

धीरे-धीरे रामानुज और कांचीपूर्णमें परस्पर प्रीति बढ़ने लगी। रामानुज कांचीपूर्णका केवल वैष्णवोचित सम्मान ही नहीं करते थे, अधिकन्तु उनके साथ अपने आचार्यकी भाँति व्यवहार भी करते थे। कांचीपूर्ण शूद्रकुलमें पैदा हुए थे। इसलिये वे भी रामानुजका बहुत ही सम्मान करते थे। कांची-पूर्णके शूद्र होने पर भी रामानुज उन्हींको अपना दीक्षा गुरु बनाना चाहते थे। अपनी इस अभिलाषा-को पूर्ण करने तथा उनका उच्छिष्ट भोजन कर अपने-को उनसे दीक्षा ग्रहणके योग्य बनानेके उद्देश्यसे रामानुजने बड़े ढङ्गसे कांचीपूर्णको अपने यहाँ भोजन करनेके लिये निमन्त्रित किया।

कांचीपूर्ण रामानुजके मनकी बात ताड़ गये। वे यह नहीं चाहते थे कि रामानुज उनका उच्छिष्ट भोजन करें। इसलिये उन्होंने रामानुजका निमन्त्रण स्वीकार तो कर लिया, परन्तु भोजनके समय दोपहर-में जान-बूझ कर कुछ देर कर सीधे रास्तेको छोड़ कर दूसरे रास्तेसे रामानुजके घर पहुँचे। इधर रामा-नुज कांचीपूर्णके आनेमें विलम्ब देख कर उनको लानेके लिये सीधे रास्तेसे उनके घरकी ओर रवाना हुए।

कांचीपूर्णका लक्ष्य ठीक बैठा। वे इसी सुअवसर की ताकमें थे। वे ठीक इसी समय रामानुजके घर पहुँचे और अपना परिचय देकर बोले—'माँ, मुझे बड़ी भूख लगी है; रामानुजके आनेमें बड़ी देर होगी, तब तक मुझसे रहा नहीं जायगा। अतएव मुझे जल्दीसे भोजन देनेकी कृपा करें।' रामानुजकी पत्नी अपने पतिके मनोगत भाव और उद्देश्यको न समझ कर कांचीपूर्णको भोजन परोस दिया। कांचीपूर्णने जल्द-से-जल्द भोजन समाप्त कर उच्छिष्ट पत्तलको दूर फेंक दिया तथा स्थान साफ कर श्रीवरदराजके मन्दिरको लौट गये। रामानुजकी पत्नीने बचे-खुचे भोजन-पदार्थोंको दास-दासियोंमें वितरण कर दिया। उन्होंने सम्पूर्ण गृहको अच्छी तरहसे धुलवाया और स्वयं दुबारा स्नान कर फिरसे दुबारा रसोई चढ़ा दी। कुछ देरके बाद रामानुज घर लौटे और अपनी पत्नीको दुबारा स्नान किये हुए देख कर उसका कारण पूछा। उनकी पत्नीने कांचीपूर्णके आगमन और उनके भोजन आदिका पूर्ण वृतान्त पतिके निकट बतलाया। उसने यह भी कहा कि कांचीपूर्ण शूद्र है, उसका उच्छिष्ट और उसके उद्देश्यसे पकायी गयी भोजन-सामग्रियाँ अशुद्ध होनेके कारण उसने तत्क्षण ही उनको साफ करवा दिया है। घर भी पूर्ण रूपसे धुलवा दिया है और दुबारा रसोई भी चढ़ा दी है। अभी अभी रसोई हुई जाती है। पत्नीकी बात सुन कर रामानुज मन-ही-मन बड़े असन्तुष्ट हुए, परन्तु ऊपरसे कुछ नहीं बोले। भोजन करनेके पश्चात् वे पुनः कांचीपूर्णके पास पहुँचे और बोले—'प्रभो! आप मुझे आज ही पंच-संस्कार प्रदान करें। इस संसारमें आपके सिवा मेरी रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। मैं आपका दास हूँ। मुझ पर कृपा करना आपका कर्त्तव्य है।'

रामानुजकी करुणाभरी बातोंको सुन कर कांची-पूर्णकी आँखें सजल हो आयीं। उन्होंने नम्रता-पूर्वक कहा—'आप सच्चे अर्थोंमें महात्मा हैं, ब्राह्मण वंशमें पैदा हुए हैं। मैं शूद्र हूँ। एक शूद्र व्यक्ति ब्राह्मणको पंच-संस्कार प्रदान करे—भला, ऐसा लोक-विरोधी कार्य मुझसे कैसे हो सकता है?'

रामानुजने दुःखी होकर कहा—'तब मैं क्या करूँ?'

कांचीपूर्णने सान्त्वनाके स्वरमें कहा—'आपको किसी योग्य गुरुसे पंच-संस्कार ग्रहण करना चाहिये।'

रामानुजने कहा—'तब यह आप ही कृपा कर बतलाइये कि इस समय उपयुक्त सद्गुरु कौन हैं, जिनके पास मैं पंचसंस्कारादि ग्रहण करूँ।'

कांचीपूर्णने कहा—'मैं पहले श्रीवरदराजके चरणोंमें इस विषयको निवेदन करूँगा। वे जैसी आज्ञा देंगे तुम्हें कल बतलाऊँगा।'

शामको कांचीपूर्णने वरदराजके चरणोंमें रामानुजके विषयमें निवेदन किया और उनकी आज्ञाके लिये प्रार्थना की। रातमें स्वप्नमें वरदराज दर्शन देकर बोले—'यामुनाचार्यके शिष्य पूर्णाचार्य ही रामानुजके लिये परम योग्य पात्र हैं। रामानुज उनके निकट पंच-संस्कार आदि ग्रहण करें।' दूसरे दिन कांचीपूर्णने रामानुजको स्वप्नवाली भगवत्-आज्ञाको सुना दिया। कुछ ही दिनोंमें पूर्णाचायकी खोजमें रामानुजने द्वितीय बार श्रीरंगमके लिये यात्रा की।

श्रीयामुनाचार्यकी परमपद प्राप्तिके पश्चात् श्रीरंगमके वैष्णवोंकी दशा ठीक उसी प्रकार हो गयी जिस प्रकार प्राणोंके अभावमें शरीरकी दशा होती है। कोई-कोई श्रीयामुनाचार्यकी अलौकिक शक्तिका वर्णन करते-करते विलाप करते, कोई-कोई दुःखित होकर निःश्वास भरते—'अब यामुनाचार्यका रिक्तस्थान कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता'। कोई-कोई मायावादियोंका प्रबल उत्थान देख कर बड़े ही शंकित हो रहे थे। इस दुःखद परिस्थितिमें कुछ वैष्णवजन एक साथ मिल कर पूर्णाचार्यके पास गये और उनसे यामुनाचार्यके रिक्तस्थानको पूर्ण करनेके लिये अनुरोध करते हुए बोले—'आप अपने परिवारके साथ कांची पधारें और वहाँ विष्णुचित्त आदि वैष्णवोंके रचित 'द्राविड-आम्नाय' आदि ग्रन्थोंको दिखला कर रामानुजको आकर्षण करें। सुयोग हो तो, उनको पंच-संस्कार प्रदान कर श्रीरंगममें श्रीयामुनाचार्यके आसन पर प्रतिष्ठित करें।'

पूर्णाचार्य वैष्णवोंकी बात सुन कर उनसे सहमत हो गये और कुछ ही दिनोंमें सपरिवार कांची रवाना हुए। इधर रामानुज भी भगवद् आज्ञानुसार कांचीसे पूर्णाचार्यके दर्शनोंके लिये यात्रा कर चुके थे। रास्तेमें मथुराके पास 'अग्रहार' नामक ग्राममें दोनोंकी भेंट हो गयी। रामानुजने पूर्णाचार्यसे उसी जगह पंच-संस्कारके लिये प्रार्थना की। परन्तु पूर्णाचार्यने कांचीपुरी चल कर उनको पंचसंस्कार ग्रहण करनेके लिये कहा। पूर्णाचार्यका प्रस्ताव सुन कर रामानुज विनीत भावसे बोले—'मेरा भाग्य बड़ा ही खराब है। मेरे दुर्भाग्यसे यामुनाचार्य अप्रकट लीलामें प्रवेश कर गये। अब मैं नहीं कह सकता, आपके मनमें क्या है? जैसा भी हो, आप कृपा कर मुझे इसी जगह पंच-संस्कार प्रदान कर मेरा दुर्भाग्य दूर करें। कोई नहीं कह सकता, कब मृत्यु हो जाय। सोते समय, जागते समय, रास्तेमें, बचपनमें, यौवनावस्थामें—कब काल चोटी पकड़ लेगा, कुछ निश्चित नहीं; इसलिये शुभ कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिए।'

रामानुजकी युक्तिपूर्ण कातरोक्ति सुन कर पूर्णाचार्य उनके प्रस्तावसे सहमत हो गये और बोले—'अच्छी बात है, तुम इस पवित्र सरोवरमें स्नान कर आओ। इसी जगह मैं तुम्हें पंच-संस्कार प्रदान करूँगा।'

रामानुजके स्नान कर लौटने पर पूर्णाचार्य उनको विधिपूर्वक पंच-संस्कार प्रदान कर बोले—'हे वैष्णव प्रवर! श्रीयामुनाचार्यके प्रयाणके पश्चात् भूतलमें सत्-सम्प्रदायके रक्षकका अभाव हो गया था। किन्तु तुम्हारा पंच-संस्कार होनेसे तुम्हीं आजसे श्रीयामुनाचार्यके स्थान पर श्रीवैष्णवोंके रक्षक हुए। तुम प्रच्छन्न बौद्धवादियोंको जड़से उखाड़ फेंक कर जगत्का परम कल्याण साधन करोगे। तुम्हारे भीतर ही यह अनिर्वचनीया शक्ति विराजमान है।'

रामानुजकी संस्कार क्रिया सम्पन्न होनेके पश्चात् सब लोग कांचीके लिये रवाना हुए। वहाँ पहुँचने पर उनसे रास्तेकी सारी घटना सुन कर महात्मा कांचीपूर्ण बड़े आनन्दित हुए। अब पूर्णाचार्य अपने परिवारके साथ कांचीपुरीमें ही वास करने लगे।

इन्हीं दिनों एक दिन सवेरे रामानुजके घर पर

एक बहुत ही थके-माँदे और भूखे प्यासे-वैष्णव आये और दीनतापूर्वक कुछ भोजन माँगने लगे। रामानुज घर पर ही थे। उन्होंने अपनी पत्नी को रातका बचा हुआ (पर्युषित) भोजन पदार्थ उन वैष्णव महोदयको दे देनेके लिये कहा। इस पर उनकी पत्नीने तुनक कर कहा—'घरमें कुछ नहीं है—क्या दूँ ?' रामानुजको अपनी पत्नीकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। वे पत्नीको किसी दूसरे कार्य में लगा कर स्वयं रसोई घरमें गये। वहाँ कुछ भी न मिला। फिर दूसरे घरमें गये। वहाँ पर उन्होंने अत्यन्त अधिक मात्रामें खाद्य-पदार्थ रखे देखे। अब तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने पत्नीको बुलाया और बिगड़ कर उससे कहा—'पाषाण हृदये ! तुम्हारा हृदय बड़ा ही कठोर है; अभावग्रस्त भूखे-प्यासे दरिद्र व्यक्ति को कुछ दे देनेसे तुम्हारा क्या बिगड़ जाता, तुम्हें कुछ अभाव नहीं हो जाता। स्त्रियाँ घरकी लक्ष्मी कहलाती हैं, तू तो ठीक इसके विपरीत दीखती है। गृहस्थके लिये अतिथि-सत्कार परम कर्त्तव्य है। पतिकी आज्ञा मानकर तुझे इस गृहस्थ-धर्म—अतिथि-सत्कारका अवश्यमेव पालन करना कर्त्तव्य था। तुमने अतिथिकी ही नहीं, मुझ पतिकी भी अवहेलाकर गृहस्थ-धर्मके प्रतिकूल आचरण किया है। समझ रखो, तुम्हारी ऐसी अवहेला हमारे संसारके उजड़नेका मूल कारण होगा।' इस प्रकार नाना उपदेश वाक्यों द्वारा पत्नीको शोधन करनेका प्रयास किये। परन्तु उनकी स्त्री अपने स्वभाव पर अड़ी रही। उसका स्वभाव न बदला और न बदला। पत्नीके बार-बार इसी प्रकारके विरुद्ध व्यवहार देख कर रामानुज अधिकाधिक व्यथित होते गये।

और एक दिनकी बात है। रामानुजकी पत्नी जल भरनेके लिये कुएँ पर गयी। वहाँ पूर्णाचार्यकी सहधर्मिणी भी जल-भरनेके लिये पहले से ही उपस्थित थीं। दोनोंको शीघ्रता थी। अतएव दोनोंने एक ही साथ अपना-अपना रस्सीसे बँधा हुआ घड़ा कुएँमें डाल दिया और जब वे घड़े जलसे भर गये, तब दोनों उन्हें एक ही साथ खिंचने लगीं। इसी समय पूर्णाचार्यकी सहधर्मिणीकी रस्सीसे पानीका एक बूँद रामानुजकी पत्नीके घड़ेपर टपक पड़ा। अब क्या था ? रामानुजकी पत्नीका पारा चढ़ गया, उसके मुँहमें जो कुछ आया कह दिया—'रे दुराचारिणी ! तू नीच कुलमें पैदा हुई है, तुझे सदाचारकी तनिक भी शिक्षा नहीं मिली है। तेरे स्पर्श किये हुए जलसे मेरा पवित्र जल अशुद्ध हो गया, क्या तू इसे समझ नहीं पा रही है ? तू किस जातिकी है, कैसी कुलीन हो, यह विचार किये बिना ही मेरी समता करने चली है।' इस प्रकार अनेक कठोर-कठोर वचनोंका प्रयोग कर वह पूर्णाचार्यकी धर्मपत्नीके साथ झगड़ने लगी। उसने यह विचार नहीं किया कि पूर्णाचार्यकी सहधर्मिणी उसकी गुरु-पत्नी हैं; और उनके स्पर्शसे शिष्यका जल अपवित्र नहीं, बल्कि अधिक पवित्र ही होता है। 'गुरुच्छिष्ट' —शिष्यके लिये परम उपादेय और कल्याणकारी होता है—यह सदाचार उसके हृदयमें एक बार भी उदित नहीं हुआ। यह सामाजिक कुलिनता, वंश-मर्यादा और ऐश्वर्यके मदमें अन्धी होनेके कारण यथार्थ एवं मूल सदाचारसे विमुख रही। पूर्णाचार्य की पत्नी दुःखी होकर घर लौट आयी और रो-रोकर पतिदेवसे सारी बातें बतलायी। पूर्णाचार्यने इस विवादको सुनकर अपनी पत्नीको ही डाँटा-फटकारा और उसे विनय और सदाचारकी शिक्षा दी। उन्होंने इस प्रकारकी अप्रिय घटनाओंको सदा के लिये बन्द करनेके उद्देश्यसे श्रीरामानुजसे परामर्श किये बिना ही चुपचाप सपरिवार श्रीरंगम चले गये।

पूर्णाचार्यके चले जानेके बाद श्रीरामानुजको पता चला कि उनके गुरुदेव सपरिवार काँचीपुरीसे चले गये हैं। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्हें दोनोंकी पत्नियोंके परस्पर झगड़ेकी बात बिलकुल ही मालूम न थी। उन्होंने गुरुदेवके इस प्रकार अचानक चले जानेका कारण ढूढ़ना आरम्भ किया। अन्तमें उन्हें सब घटना मालूम हो गयी। वे पत्नीके

दुर्व्यवहारके कारण उससे सम्पूर्ण विरक्त हो उठे। उनके लिये अब अपनी पत्नीके साथ रहना क्षणभरके लिये भी असंभव जान पड़ने लगा। उन्होंने उसे बुलाकर कहा—'सहधर्मिणीके लिये बतलायी विधियों का उल्लंघन करना पत्नीको उचित नहीं है। तुम सदा मेरी इच्छाके विपरीत कार्य करती हो। तुमने अपने दुर्व्यवहारोंसे संसार-सुखको नष्ट कर दिया है। जो स्त्री अपने पतिके धर्मपालनमें सहायक नहीं हो सकती है, उसे अपने पित्रालयमें ही वास करना उचित है। पति-पत्नीका सम्बन्ध केवल इन्द्रिय-सुख और संतान-उत्पत्तिके लिये ही नहीं होता—बल्कि धर्मपालनमें परस्पर सहायता करनी ही उसका मूल कारण है। इसीलिये विवाहिता स्त्रीको कामिनी, या रमणी न कहकर 'सहधर्मिणी कहा गया है। लौकिक सदाचार, कुलिनता, वंशमर्यादा और धन-संग्रह ही हमारा धर्म नहीं है। तुमने गुरुपत्नीके प्रति नितान्त दुर्व्यवहार किया है। इसका प्रायश्चित होना आवश्यक है।' परन्तु रामानुजके इन उपदेशोंका भी उनकी पत्नी पर कोई प्रभाव न पड़ा। इस पर रामानुजने अपनी पत्नीसे जीवन भरके लिये छुटकारा पानेका उपाय सोचने लगे।

उपरोक्त घटनाकी स्मृति अभी हल्की भी न हो पायी थी, कि एक दिन और भी उसी प्रकारकी अप्रिय घटना घट गयी। रामानुज श्रीवरदराजकी सेवामें लगे हुए थे। इसी समय एक भूखा-प्यासा ब्राह्मण उनके पास आकर कुछ भोजनके लिये प्रार्थना करने लगा। रामानुजने अपनी स्वाभाविक उदारताके साथ कहा—'आप कृपा कर मेरे घर पर पधारें और मेरी पत्नीसे माँगकर भोजन कर पुनः मेरे पास आवें। घर पर ऐसा अवश्य कहियेगा कि मैंने आपको भेजा है। ब्रह्मणी अवश्य ही आपको आदरपूर्वक भोजन करायेगी। इस समय मैं भगवानकी आवश्यक सेवामें हूँ, अन्यथा आपके साथ चलकर आपको भोजन कराता। मैं आपके साथ न जा सका, क्योंकि अतिथि सेवासे भगवानकी सेवा अत्यधिक श्रेष्ठ है—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।' रामानुजकी बात सुनकर ब्राह्मण उनके घर पहुँचा और उनकी पत्नीके निकट, उनके कहनेके अनुसार भोजन माँगा। ब्राह्मणकी बात सुनकर रामानुजकी पत्नीने बिगड़ कर कहा—'आज मेरे घरमें भात या चावल कुछ भी नहीं है, तुम कहीं अन्यत्र चेष्टा करो, यहाँ कुछ भी नहीं मिलेगा। और यदि दूसरी जगह चेष्टा करने में तुम्हें कष्ट प्रतीत होता हो, तो जिन्होंने तुम्हें यहाँ भेजा है, उन्हींके पास जाकर भोजन माँग लो।' बेचारा भूखा ब्राह्मण दुःखी होकर पुनः रामानुजके पास लौट आया। उसने रामानुजको सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दी। रामानुजने क्षणभर चिन्ता कर ब्राह्मणको पुनः अपनी पत्नीके पास भेजा। इस बार उन्होंने ब्राह्मणके हाथमें एक पत्र, हल्दी और एक नया वस्त्र देकर कहा—"आप मेरी पत्नीके हाथोंमें इस पत्र, हल्दी और वस्त्रको देकर कहियेगा कि मैं तुम्हारे पित्रालयसे आ रहा हूँ। तुम्हारे भाईका विवाह है; उन्होंने तुम्हें बुलाया है।" रामानुजके कहनेके अनुसार वह विप्र पुनः रामानुजकी पत्नीके पास पहुँचे और उसके हाथोंमें पत्र देकर उसे पिताके घर चलने की तैयारी करनेके लिये कहा। इस बार रामानुजकी पत्नीने ब्राह्मणको बड़े आदरके साथ खिलाया-पिलाया और स्वयं पिताके घर चलनेकी तैयारी करने लगी। इसी समय रामानुज लौटे। उन्होंने अनजानकी भाँति अपनी पत्नीके निकट उसके पित्रालयसे एक ब्राह्मणके आनेकी बात तथा भाईके विवाहके उपलक्ष्य में आये हुए निमन्त्रणके सम्बन्धमें सुना। उन्होंने उसके पित्रालय जानेका अनुमोदन किया। पत्नी भी प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणके साथ अपनी मायकाके लिये रवाना हो गयी।

इधर गुरु-वैष्णवोंसे विद्वेष करनेवाली स्त्रीके दुःसंगसे सदाके लिये छुटकारा मिल गया—ऐसा सोच कर रामानुजने परमशान्तिका अनुभव किया। उन्होंने गृहत्याग कर संन्यास ग्रहण करनेको सोचा। इसलिये वे एक दिन वरदराजके समीप जाकर उनको दण्डवत्-

प्रणाम कर बोले—'प्रभो, आजसे मैं सब प्रकारसे आपका ही हो गया। कृपया मुझे स्वीकार कीजिए।' इसके पश्चात संन्यासके उपकरणोंका संग्रहकर श्रीवरदराजकी इच्छानुसार अनन्तसरोवरके तटपर उन्होंने श्रीयामुनाचार्यको स्मरण करके त्रिदण्ड ग्रहण कर लिया।

वरदराजने अपने सेवाधिकारी—कांचीपूर्णको अपने सामने श्रीरामानुजको समारोहके साथ लानेकी आज्ञा दी। कांचीपूर्ण वरदराजकी इच्छानुसार श्रीरामानुजको पालकीमें बैठाकर ध्वजा-पताका, छत्र-चँवर एवं ब्राह्मण वैष्णवोंके साथ बड़े समारोह से भगवन्मंदिरमें ले आये। उस समय ब्राह्मण स्तुति पाठ कर रहे थे, चारों ओर बाजे बज रहे थे। इस प्रकार श्रीरामानुज कांचीपूर्णके साथ वरदराजके सामने उपस्थित हुए। रामानुजने विधिपूर्वक वरदराजको साष्टांग-दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीवरदराजने भी प्रसन्न होकर पुजारी द्वारा रामानुजका विशेषरूपसे समादर और आशिष प्रदान किये। इतना ही नहीं, उन्होंने रामानुजको 'यतीन्द्र' की उपाधि प्रदान कर उन्हें मठमें प्रवेश करनेका अधिकार भी दे दिया। यतिराज रामानुज संन्यास ग्रहण कर श्रीकांचीमें ही वास करने लगे।

(क्रमशः)

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

श्रीगुरुभक्ति

सुविस्तृत मायाजालमें आवद्ध, मायाके मोहमें अन्धे हुए जीव सुखकी आशामें इतस्ततः भ्रमण करते हैं; विद्या, बुद्धि, धन, मान—सबमें सुख अन्वेषण करते हैं; परन्तु कहीं भी सुख नहीं पाते। इस प्रकार सुखकी खोजमें जीवोंके अनेकों जन्म बीत जाते हैं। अनेक जन्मोंमें अर्जित सुकृति-पुंजके फल-स्वरूप जब जीवके हृदयमें भगवत् सम्बन्धी श्रद्धाका संचार होता है, तभी यह सूचित होता है कि अब उसे वास्तविक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, जीव उनके नित्य किङ्कर हैं। श्रीकृष्णकी भक्ति करने से जीवके सारे क्लेशोंके अन्त होने पर कृष्ण-दास्यकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार सुदृढ़ विश्वासका नाम ही 'श्रद्धा' है। श्रद्धावान जीव अल्प समयमें ही सद्गुरुका चरणाश्रय करता है; श्रीगुरु-कृपाके बलसे ही उसको सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

वैष्णव अपार करुणामय होते हैं। वे जगत-के परम बन्धु होते हैं। जीवोंको कृष्ण-विमुख जान कर वे जगत्में निरन्तर भक्ति तत्त्वका प्रचार करते हैं। पुनः जब जीव-समूह भक्ति-तत्त्वके प्रति श्रद्धावान् होकर वैष्णवचरणाश्रय करते हैं, उस समय वैष्णवगण श्रीगुरुके रूपमें उनको भगवद्भजनका उपदेश करते हैं। भजनविज्ञ अनन्यचेता उपयुक्त शिष्यके ऊपर कृपा कर—उनको श्रीकृष्णके अप्राकृत भण्डारको दर्शनकी शक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार वैष्णव-कृपाकी सीमा नहीं है। अगणित अनर्थोंसे भरपूर, नाना प्रकारसे मायाके आपात् सुखकर विषय-भोगों में फँसे हुए, संसार-सागरमें निमज्जित अति क्षुद्र अधम जीवोंको जो श्रीगुरुके रूपमें अपने चरणोंमें स्थान देते हैं, जो उनके भजन-विहीन जीवनका भार स्वयं अपने कंधों पर ले लेते हैं एवं जो अपने विशुद्ध चरित्र और सुदृढ़ आदर्शों द्वारा उनको मुग्ध कर उसके द्वारा शक्ति संचार कर उनको भजन मार्ग पर क्रमशः अग्रसर करते हैं, उन वैष्णवोंकी अपार कृपाकी वास्तवमें कोई सीमा नहीं है, वह

अनन्त और अद्भुत है। इसीलिये श्रीनरोत्तम ठाकुर ने लिखा है—

श्रीगुरु करुणासिन्धु, अधम-जनार बन्धु,
'लोकनाथ' लोकेर जीवन ।
हा हा प्रभु कर दया, देह मोरे पदछाया,
एवे यश घुषुक त्रिभुवने ॥
चक्षुदान दिला येह, जन्मे जन्मे प्रभु सेई,
दिव्यज्ञान हृदे प्रकाशित ।
प्रेम भक्ति याँहा हैते, अविद्या विनाश याते,
वेदे गाय याँहार चरित ॥

गुरु दो प्रकारके होते हैं—दीक्षा-गुरु और शिक्षा-गुरु। जिनसे मंत्र लिया जाता है, वे दीक्षागुरु हैं; जिनसे भजन सम्बन्धी शिक्षा पायी जाती है, वे शिक्षागुरु हैं। इन दोनोंको ही शिष्य एक समान सम्मान प्रदान करेंगे; दोनोंको ही कृष्ण शक्तिका प्रकाश समझेंगे। उनमें किसी प्रकारका भेद-भाव रखनेसे शिष्य अपराधी हो पड़ेंगे। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास ।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश ॥
गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे ।
गुरु रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्त गणे ।
शिक्षागुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप ।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ—एइ दुइ रूप ॥

गुरुदेवको साक्षात् भगवान् मानना भयंकर अपराध है, क्योंकि इससे जीव और ईश्वरको समान समझनारूप मायावाद मत हो जाता है अर्थात् इसके द्वारा जीव ही ईश्वर है—ऐसी भावना हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, जो भक्तिके सर्वथा विरुद्ध और कपोल-कल्पित मत है। हाँ, श्रीगुरुदेवको श्रीभगवान्का प्रकाश-विशेष या भगवानकी शक्ति मानकर उनकी भक्ति करनेमें कोई दोष नहीं है। प्रेममय भगवान् ही श्रीगुरुदेवमें प्रकटित होकर दीक्षा दे रहे हैं—शिष्यके मनमें ऐसी भावना रहने से उसका कल्याण होगा; श्रीगुरुदेवके वचनोंमें दृढ़ विश्वास होगा और उनके प्रति अचला भक्ति होगी।

श्रद्धालु जीव अनेक यत्नपूर्वक सद्गुरुका चरणाश्रय करेंगे। वैष्णवाचार्य श्रीसनातन गोस्वामी ने विभिन्न शास्त्रोंसे लेकर श्रीगुरु तथा शिष्यके लक्षण 'हरिभक्तिविलास' ग्रन्थमें संग्रह किये हैं। उन सब शास्त्रोंका तात्पर्य है—दृढ़ चरित्र, विशुद्ध भक्त भागवतोत्तम ही जीवोंके गुरु हैं; और निष्पाप शुद्ध-श्रद्धालु विनीत शिष्य ही शिक्षाके लिये उपयुक्त है। इसके विपरीत होनेसे ही अनर्थ उपस्थित होता है। इस विषयमें श्रीमन्महाप्रभुने स्वयं कहा है—"येह कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय" तथा "गुरु यथा भक्ति-शून्य तथा शिष्यगण।" महाप्रभुके श्रीमुखकी वाणी सदा-सर्वदा सत्य हुआ करती है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

शास्त्रमें ऐसा कहा गया है कि गुरु बहुत दिनों तक शिष्यकी परीक्षा करेंगे और शिष्य भी श्रीगुरुके चरित्रको भलीभाँति परखेगा। इस प्रकार दोनों-दोनोंकी शुद्धिता जान लेने पर सम्बन्ध स्थापन करेंगे। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध दो-चार दिनोंके लिये नहीं होता, यह सम्बन्ध जीवनके बाद भी वर्त्तमान रहता है। शिष्यको सावधानीके साथ अन्वेषण कर भलीभाँति देखभाल करनेके पश्चात् ही सद्गुरुका आश्रय लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो वह नाना कारणोंसे गुरुदेवके प्रति अचला भक्ति नहीं रख सकता एवं गुरुके प्रति अवज्ञा करनेके कारण परमार्थसे गिर जाता है। यदि गुरु अयोग्य हैं, तो शिष्य उनको त्यागकर दूसरे सद्गुरुकी शरण लेंगे। शिष्य भी यदि पतित हो जाय और श्रीगुरुदेव उसका संशोधन करनेमें असमर्थ हों तो ऐसे शिष्यको वे परित्याग करेंगे।

श्रीगुरुदेव शिष्यको जो भी आज्ञा दें, शिष्यको दृढ़ श्रद्धाके साथ उसका पालन करना चाहिए। ऐसा न कर बहुतोंके पास नाना प्रकारके उपदेशोंके श्रवण

से लौल्य (चाञ्चल्य) दोषके कारण उसका भजन नहीं हो सकेगा। परन्तु देखना होगा कि श्रीगुरुदेव जो आज्ञा देते हैं, वह शास्त्र-संगत है या नहीं। यदि वह आज्ञा शास्त्र-विरुद्ध लगे, तो सरलतापूर्वक अपने संशयको श्रीगुरु चरणोंमें निवेदन कर शास्त्रवाक्योंके साथ समन्वय कर लेंगे अर्थात् श्रीगुरुदेव द्वारा अपनी आज्ञाकी वैधता शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार पर प्रमाणित करनेके बाद संशय-रहित होकर उसका पालन करेंगे। गुरुदेव जैसी आज्ञा दें, उसका विशेष यत्न और दृढ़ताके साथ पालन न करनेसे किसी प्रकार भी गुरुकी कृपा नहीं पायी जा सकती है।

भागवतोत्तम गुरुदेव इच्छा करनेसे ही शिष्यके अन्दर शक्ति संचार कर उसे परम भागवत बना सकते हैं। परन्तु अयोग्य शिष्यके प्रति वैसा करने के लिये श्रीगुरुदेवकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती। जीव यत्नपूर्वक श्रीगुरुके वचनोंका पालन कर अल्पकालमें ही गुरुकृपारूपी धनका अधिकारी हो सकते हैं। श्रीगुरु-कृपा क्या चीज है, उनको इसका बोध हो जाता है। जब तक भजनमें अनर्थ रहे, तब तक यत्नके साथ शास्त्र विधि-निषेधोंका पालन करते हुए श्रीगुरुके बतलाये हुए भजन-पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिए। श्रीगुरुदेवकी कृपासे जिस समय शिष्य अनर्थ-सागरको पार होकर निष्ठा और तत्पश्चात् रुचिके राज्यमें उपस्थित होते हैं, उसी समय श्रीगुरु कृपा प्रबलरूपसे प्रवाहित होने लगती है। उस समय श्रीगुरुदेव वैसे शिष्यके जीवन-धन हुआ करते हैं। उनके प्रति शिष्यकी ममता उत्पन्न होती है और क्रमशः भजन-सुख वृद्धि होनेके साथ-साथ यह ममता परिपक्व होने पर श्रीगुरुदेवके चरणों में अत्यन्त यत्नके साथ अपना आत्म समर्पण कर देता है।

जब तक स्वाभाविकी प्रीतिका उदय नहीं होता, तबतक श्रीगुरुकृपा प्राप्त करनेके लिये उनकी सेवा करना शिष्यके लिये नितान्त आवश्यक है। यत्न पूर्वक श्रीगुरुके वचनोंका पालन करना ही उनकी प्रधान सेवा है। अनेक शिष्य ऐसे देखे जाते हैं, जो श्रीगुरुदेवके वचनोंका पालन या आचरण करने में उतना उत्साह या यत्न नहीं प्रकाश करते, परन्तु किसी प्रकारसे श्रीगुरुदेवके पद-सेवन या पंखा-झलने आदिके लिये बड़े व्यतिव्यस्त दीखते हैं। यदि यह कार्य साहजिक प्रीतिके साथ हो, तो अत्युत्तम बात है; परन्तु यदि अन्तरमें कपटता रहें या ऐसी सेवासे गुरुदेवका प्रिय हो जाऊँगा—ऐसी आशा रहे, तो यह उतनी अच्छी बात नहीं। इससे गुरुदेवका प्रिय नहीं हुआ जाता। उनकी (गुरुदेवकी) आज्ञाका पालन करनेसे वे बड़े संतुष्ट होते हैं। उपरोक्त सेवन कार्य बुरे नहीं हैं; उनसे श्रीगुरुवाक्यको पालन करने की शक्ति मिलती है और उसीसे श्रीगुरु-प्रसादकी प्राप्ति होती है। साहजिक प्रीति-जनित सेवाके फल-स्वरूप आत्म-प्रसाद लाभ होता है।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

उपनिषद्-वाणी

तैत्तिरीयोपनिषद् (ब्रह्मानन्दवल्ली)

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ६, संख्या ४-६, पृष्ठ १२१ से आगे]

परमब्रह्म परमेश्वर सत्य स्वरूप हैं। 'सत्य'-शब्द यहाँ नित्यताका बोधक है; वे ज्ञान स्वरूप हैं, उनमें अज्ञानका लेश भी नहीं है। वे देश और कालकी सीमासे अतीत अर्थात् अनन्त हैं। वे परव्योममें रहते हुए भी समस्त प्राणियोंकी हृदय-गुफामें छिपे हुए हैं। जो उनको तत्त्वसे जान लेते हैं, वे उन सर्वज्ञ परमेश्वरके साथ रह कर सब प्रकारके अलौकिक भोगोंको भोगनेमें समर्थ होते हैं। उन ब्रह्मसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे नाना प्रकारकी औषधियाँ, औषधियोंसे अन्न और अन्नसे पुरुष अर्थात् जीव उत्पन्न हुए। अन्नसे उत्पन्न होनेके कारण पुरुषको अन्न-रसमय कहा जाता है। इसको पक्षी मान कर उसके सिरको पक्षीका सिर, दाहिनी भुजाको दाहिना पंख, बायी भुजाको बाया पंख, शरीरके मध्यभागको पक्षीका मध्यभाग, दोनों पैरोंको पूँछ और प्रतिष्ठा (पक्षीके पैर) माना गया है।

अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति हुई है अर्थात् पृथ्वी पर निवास करनेवाले समस्त प्राणी अन्नसे ही उत्पन्न हुए हैं। अन्नके परिणामस्वरूप रजः और वीर्यसे ही प्राणियोंके शरीर बने हैं, उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्न द्वारा ही उनका पालन-पोषण होता है। अतएव अन्न ही उनका जीवन है। फिर अन्तमें अन्नमें ही—अन्न उत्पन्न करनेवाली पृथ्वीमें ही यह शरीर विलीन हो जाता है। 'ऋयते' या 'अत्ति'—इन दो क्रियाओंसे 'अन्न' शब्द बना है। इस अन्न-रसमय शरीरसे प्राणमय शरीर पृथक् और स्वतन्त्र तत्त्व है। उसीके द्वारा ही अन्न-रसमय शरीर पूर्ण है। अन्न-रसमय स्थूल शरीरकी अपेक्षा प्राणमय शरीर अधिक सूक्ष्म होनेके कारण वह, अन्न-रसमय शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें व्याप्त है। प्राणमय शरीर भी पुरुषाकार है। उसकी पक्षीके रूपमें कल्पना कर ऐसा कहा गया है कि—प्राण उसका सिर है, व्यान दाहिना पङ्ख है, अपान बायाँ पङ्ख है, सर्व शरीर व्यापी समानवायु उसकी आत्मा है, उसका आश्रय (स्थान) शरीरका मध्यभाग और पृथ्वी उसकी पूंछ और आधार है।

मनुष्य, पशु, देवता आदि जितने भी शरीरधारी प्राणी हैं, वे सब प्राणके सहारे ही जीवित रहते हैं, इसलिये प्राण ही सब प्राणियोंकी आयु—जीवन है। इसलिये इसका नाम 'सर्वायुः' भी है। 'प्राण सब प्राणियोंकी आयु है'—यों समझ कर जो साधक इस प्राणकी ब्रह्मरूपसे उपासना करते हैं, वे पूर्ण आयुको प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त प्राणमय शरीरसे भिन्न, उससे भी सूक्ष्म होनेके कारण उसका भी अन्तर्यामी दूसरा पुरुष है, उसका नाम है—मनोमय। इस मनोमय शरीर द्वारा प्राणमय शरीर पूर्ण है। यह मनोमय शरीर भी पुरुषके ही आकारका है। यजुर्वेद उसका सिर है, ऋग्वेद उसका दाहिना पङ्ख है, सामवेद उसका बाया पङ्ख है, आदेश (विधि-वाक्य समूह) मध्यभाग है तथा अथर्ववेद पूँछ और आधार है, यजुर्वेद सर्वप्रधान होनेके कारण मस्तक माना गया है। वेदमन्त्रके वर्ण, पद और वाक्य आदिके उच्चारणके लिये पहले मनमें ही संकल्प उठता है। अतएव संकल्पात्मक वृत्तिके द्वारा मनोमय आत्माके साथ वेद-मन्त्रोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये उसे मनोमय पुरुषके

अङ्गोंमें ही स्थान दिया गया है। शरीरमें जो स्थान दोनों भुजाओंका है, वही स्थान मनोमय पुरुषके अङ्गोंमें ऋग्वेद और सामवेदका है। यज्ञ-यागादिमें इनके मंत्रों द्वारा स्तवन और गायन होता है, अतः यजुर्मंत्रोंकी अपेक्षा ये अप्रधान हैं; फिर भी भुजाओं की भाँति यज्ञमें विशेष सहायक होनेके कारण इनको भुजाओंका रूप दिया गया है। आदेश (विधिवाक्य) वेदोंके भीतर हैं, इसलिये उन्हें ही मध्यभाग कहा गया है। अथर्ववेदमें शान्तिक और पौष्टिक आदि कर्मोंके साधक मंत्र हैं, जो प्रतिष्ठाके हेतु हैं, इसलिये उनकी पूँछ और प्रतिष्ठाके रूपमें कल्पना की गयी है।

परम ब्रह्म परमात्माका जो स्वरूपभूत आनन्द है, वहाँ तक मन, वाणी आदिकी पहुँच नहीं है। परन्तु ये मन, वाणी आदि साधक पुरुषको ब्रह्मके पास पहुँचानेमें सहायक हैं, ये साधकको उन परब्रह्मके द्वार तक पहुँचा कर स्वयं लौट आते हैं। ब्रह्मको प्राप्त होकर उनके आनन्दमय स्वरूपको जान लेनेपर साधक भयभीत नहीं होता; क्योंकि द्वितीय वस्तु (माया) में अभिनिवेश (आसक्ति) ही भयका कारण है जो ब्रह्मप्राप्त साधकोंमें नहीं होता है। यह परमात्मा मनोमय शरीरके भी अन्तर्यामी हैं।

उक्त मनोमय शरीरसे भिन्न और स्वतंत्र विज्ञानमय आत्मा है। उनको जीवात्मा कहते हैं। इस विज्ञानमय आत्मासे ही मनोमय शरीर पूर्ण है। यह विज्ञानमय जीवात्मा शरीरमें सर्वत्र व्याप्त है। श्रद्धा (दृढ़ विश्वास) उसका सिर है, ऋत (सदाचार) उसका दाहिना पंख है, सत्य उसका बायाँ पंख है, योग आत्म शरीरका मध्य भाग है और महः नाम से प्रसिद्ध परमात्मा उसकी पूँछ और आधार है। तात्पर्य यह है कि श्रद्धापूर्वक सदाचार और सत्य भाषण द्वारा योगाभ्यास करनेसे परमात्माका साक्षात्कार होता है। परमात्मा जीवात्माके आश्रय होनेके कारण उन्हें ही जीवात्माकी पूँछ और आश्रय कहा गया है। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ और मन इस विज्ञानमय जीवात्माकी सेवा करते हैं। यदि कोई साधक इस विज्ञानमय आत्माकी ब्रह्मरूपमें उपासना करे, तो उसके अनेक जन्मोंके संचित पाप-समुदाय नष्ट हो जाता है, वह दिव्य भोगोंको भोगता है।

इस विज्ञानमय शरीरसे भिन्न, उसके भी भीतर रहनेवाला एक दूसरा स्वतंत्र आत्मा है; वह है आनन्दमय परमात्मा। उसकेद्वारा ही विज्ञानमय आत्मा पूर्ण है। वे भी पुरुषाकार है। समस्त पुरुषोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण उनकी ही संज्ञा 'पुरुष' है। प्रियभाव उनका सिर है, मोद उनका दाहिना पंख है, प्रमोद उनका बायाँ पंख है, आनन्द उनका मध्यभाग है और स्वयं ब्रह्म ही पूँछ और आधार हैं। यदि कोई इस पुरुषाकार ब्रह्मको असत् अर्थात् सत्ताहीन समझता है, तो वह स्वयं असत् हो जाता है अर्थात् सदाचारसे भ्रष्ट नीच हो जाता है। और यदि कोई ब्रह्मके यथार्थ तत्त्वको न जानकर उनको सत् मानता है, अर्थात् शास्त्र और महाजनोंकी वाणियोंपर विश्वास कर ईश्वरकी सत्ता पर पूर्ण विश्वास करता है, तो वह सत् हो जाता है, और संतोकी कृपासे तत्त्वज्ञान प्राप्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

आनन्दमय ब्रह्मका शरीर उनसे अभिन्न होता है अर्थात् ईश्वरमें देह और देहीका भेद नहीं होता। उनका कोई दूसरा अन्तर्यामी नहीं है।

सृष्टिके आदिमें परमात्माने यह विचार किया कि मैं बहुत हो जाऊँ। उनके इस संकल्पसे जड़-चेतन समस्त जगत्की सृष्टि हुई। उसके बाद वे स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात् पंचभूतोंको बनाये तथा जड़-चेतन विभिन्न रूपोंमें व्यक्त हुए। स्थूल और सूक्ष्म रूपमें प्रकट होनेसे पूर्व जगत् अव्यक्त रूपमें था। पीछेसे यह नामरूपमय जड़-चेतनात्मक जगत् उत्पन्न हुआ। वे स्वयं जड़-चेतन रूप जगतका प्रकाश करते हैं, इसलिये उनका एक नाम 'सुकृत' भी है। वह सुकृत रस-स्वरूप (आनन्दमय) है। जीव उनको प्राप्त कर आनन्दमय हो जाता है। अनादि कालसे जन्म-मृत्युरूप घोर दुःखका अनुभव करने वाला जीवात्मा इस रसमय परब्रह्मको प्राप्त किये

पूर्णानन्द या नित्यानन्द अथवा अनन्तानन्द प्राप्त नहीं कर सकता। यदि वे आकाश-स्वरूप परमेश्वर आनन्द-स्वरूप नहीं होते, तो भला कौन जीवित रह सकता था और कौन प्राणोंकी क्रिया—हिलना डुलना आदि कर सकता था। वे ही सबके जीवन-निर्वाहकी सब प्रकारसे सुव्यवस्था करते हैं। जीवात्मा जिस समय अदृश्य, अव्यक्त, दूसरोंके बिना आश्रयके स्थित (परन्तु सबके आश्रय-स्वरूप) परमात्मामें अविचल स्थिति लाभकर लेता है, उस समय वह अभय हो जाता है और जभी वह उनसे थोड़ा भी अलग होता है—उन्हें थोड़ी देरके लिये भी भूल जाता है, उसी समय भय प्राप्त होता है। अर्थात् कृष्ण-विमुख होने पर द्वितीय वस्तु (माया) में आसक्त होने पर ही भय उत्पन्न होता है। पण्डिताभिमानी व्यक्ति भी परमात्मासे स्वतन्त्र होने पर भयभीत रहता है। भक्त प्रह्लादने कहा है—

"विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं,पुष्णन् स्वलोकाय न कल्पते वै।
यः स्वीय-पारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः॥"
(श्रीमद्भा० ७।६।१६)

अर्थात् विद्वान व्यक्ति भी कुटुम्बके भरण-पोषणमें व्यस्त रह कर यह अपना है, यह पर है, इस प्रकार अपने-परायेका भेदभाव रखनेके कारण अज्ञानियोंके समान ही तमः प्रधान गति प्राप्त होते हैं।

उन परमात्माके भयसे पवन, सूर्य, इन्द्र और मृत्यु—ये सब अपना-अपना कार्य नियमपूर्वक यथा-योग्य रूपमें करते हैं।

अब उन आनन्दमय ब्रह्मके आनन्दके स्वरूपका विचार किया जा रहा है। सबसे पहले यह बतलाया जा रहा है कि मनुष्यलोकका आनन्द कैसा और कितना है। यदि एक मनुष्य युवा हो, वह भी साधारण युवक नहीं—सदाचारी हो, कुलीन हो, अच्छे स्वभाव वाला हो, सम्पूर्ण वेदोंका पारंगत हो, उसे कोई रोग न हो, समर्थ हो, उसका शरीर सुदृढ़ हो, सब प्रकारके बलसे सम्पन्न हो और धन सम्पत्ति-से यह सम्पूर्ण भूमण्डल उसके अधिकारमें हो, तो यह मनुष्यका सबसे महान् आनन्द है। ऐसे मनुष्य-के आनन्दसे एक मनुष्य-गन्धर्व (जो मनुष्य उत्तम-कर्म करके गन्धर्वका जन्म ग्रहण करते हैं) का आनन्द सौगुना होता है तथा आनन्दकी कामनासे रहित वेदज्ञ पुरुषोंको वैसा आनन्द स्वभावतः प्राप्त है। पूर्वोक्त मनुष्य-गन्धर्वोंकी अपेक्षा देव-गन्धर्वोंका आनन्द सौगुना होता है और देव-गन्धर्वों जैसा आनन्द अका-महत (कामना रहित) वेदज्ञ पुरुषोंको स्वाभावतः प्राप्त है। इस प्रकारके देव-गन्धर्वोंके आनन्दसे सौगुना आनन्द एक पितृलोकके स्थायी निवासीको प्राप्त है और वैसा आनन्द अकामहत वेदज्ञ-पुरुषको स्वाभा-वतः प्राप्त है। पितृलोकके आनन्दसे सौगुना आनन्द 'आजानज' नामक देवोंको प्राप्त है एवं 'आजानज' अर्थात् कर्मफलसे स्वर्गमें पैदा होनेवाले देवताओंको प्राप्त होनेवाला आनन्द एक अकामहत श्रोत्रियको स्वतः ही प्राप्त है।

पूर्वोक्त आजानज देवताओंके आनन्दसे सौगुना आनन्द एक कर्मदेवता (जो अपने कर्मोंके फलसे देवभावको प्राप्त हुए हैं) को प्राप्त है और वैसा आनन्द अकामहत श्रोत्रियको स्वभावतः प्राप्त है। फिर कर्म-देवोंके आनन्दसे सौगुना आनन्द एक स्वभाव सिद्ध देवताको प्राप्त है एवं आकामहत वेदोंके रहस्योंको जाननेवाले पुरुषोंके लिये वैसा आनन्द स्वभावसिद्ध है। स्वभावसिद्ध देवताओंके आनन्दकी अपेक्षा देवराज इन्द्रका आनन्द सौगुना होता है और वैसा आनन्द अकामहत वेदज्ञ-पुरुषोंको स्वतः प्राप्त है। इन्द्रके आनन्दसे भी देवगुरु बृहस्पतिका आनन्द सौगुना होता है और बृहस्पति जैसा आनन्द अकामहत वेदज्ञ-पुरुषोंको स्वभावतः प्राप्त है। बृहस्पतिके आनन्दसे भी प्रजापतिका आनन्द सौगुना होता है और ऐसा आनन्द अकामहत श्रोत्रिय पुरुषों को स्वभावतः प्राप्त है। प्रजापतिसे सौगुना आनन्द ब्रह्माको प्राप्त है। एवं ब्रह्मा जैसा आनन्द अकामहत श्रोत्रियको स्वाभाविक रूपमें प्राप्त है। इस प्रकार यहाँ एक-से-एक बढ़कर जिन आनन्दोंका वर्णन किया

गया है, उन सबका केन्द्र पूर्णानन्द-स्वरूप परमात्मा हैं, जिनके आनन्दकी तुलनामें पूर्वोक्त सारे आनन्द बहुत ही तुच्छ हैं। उन पूर्णानन्द परब्रह्म परमात्माको जान लेने पर ही नित्यानन्द या पूर्णानन्दको प्राप्त हुआ जा सकता है। अन्यथा पूर्वोक्त दूसरे सब प्रकार के आनन्दोंका नाश है। क्योंकि ब्रह्मासे लेकर पृथ्वी आदिलोकोंके समस्त प्राणी जब मृत्युके अधीन हैं, तब उनका आनन्द नित्य कैसे हो सकता है? परन्तु अकामहत श्रोत्रिय अर्थात् सब प्रकारकी कामनाओंसे रहित वेदज्ञ-पुरुष भगवत-तत्त्वका ज्ञान लाभ कर सांसारिक या पारलौकिक विषयानन्दोंको तुच्छ जान कर भगवत्-सेवा द्वारा वैकुण्ठधामको प्राप्त होकर पूर्णानन्दका अधिकारी हो जाता है।

मनके सहित सभी इन्द्रियाँ जहाँसे उसे न पाकर लौट आती हैं अर्थात् जिस परमानन्द-धामके सम्बन्धमें कुछ वर्णन करना मनुष्यकी वाक् इन्द्रियकी शक्तिसे परेकी बात है तथा मन भी जिसकी धारणा नहीं कर पाता, उस वैकुण्ठ-धामको प्राप्तकर लेने पर—आनन्दमयका स्वरूप उपलब्धि कर लेने पर स्वतः परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है। परमानन्दको प्राप्त विद्वान् व्यक्ति किसी भी भयसे भीत नहीं होता, वह सर्वथा निर्भय हो जाता है। उसको किसी प्रकारका शोक नहीं होता। इसका कारण यह है कि उसे इस बातकी कोई चिन्ता नहीं होती कि मैंने सत्कर्म नहीं किये हैं अथवा मैंने असत्कर्मोंके आचरण किये हैं। उसके मनमें न तो पुण्यकर्मोंके फल भोगकी आशा रहती है और न पाप कर्मोंके फल-स्वरूप नरक आदि-का भय ही रहता है। वह लोभ और भयसे उत्पन्न संतापसे परे होता है। वह परमात्मासे योगयुक्त होकर बिलकुल निर्भय होता है।

भृगुवल्ली

भृगु नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे। इनके पिताका नाम वरुण था। एक बार भृगुके मनमें परमात्म-तत्त्व जाननेकी बड़ी उत्कंठा हुई। वे अपने पिता वरुणके पास गये और उनसे परमात्म तत्त्वके सम्बन्धमें जिज्ञासा किये। तब वरुणने भृगुसे कहा—बेटा! अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाणी—ये सभी ब्रह्मज्ञान उपलब्धके द्वारस्वरूप हैं, इन सबमें ब्रह्मकी सत्ता स्फुरित हो रही है। ये समस्त प्राणी जिनसे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिनकी शक्ति पाकर जीवित रहते हैं एवं प्रलयकालके समय जिनमें प्रवेश करते हैं, उन्हींको जाननेकी इच्छा कर। वे ही ब्रह्म हैं।

पिताके उपदेशानुसार भृगुने यह निश्चय किया कि अन्न ही ब्रह्म है; क्योंकि समस्त प्राणी अन्नके परिणामभूत वीर्यसे जन्मते हैं—उत्पन्न होकर अन्नके सहारे ही वे जीवित रहते हैं और मृत्यु होने पर वे अन्न-स्वरूप पृथ्वीमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। ऐसा निश्चय कर वे पिताके समीप उपस्थित हुए और अपनी उपलब्धिको उनके निकट बतलाये। पिताने सोचा कि भृगुने ब्रह्मके स्थूलरूपको ही ब्रह्म समझा है। अतएव इसे और भी अधिक तपस्या करके अभी और विचार करनेकी आवश्यकता है। अभी इसने जो कुछ समझा है उसे गलत बतलानेमें भी हित नहीं है। इसलिये इसकी बातका उत्तर न देना ही ठीक है।

पितासे उत्तर न पाकर भृगुने कहा—पिताजी! यदि मैंने ठीक रूपमें न समझा हो तो मुझे यथार्थ उपदेश करें। वरुणने कहा—वत्स, तू और भी तपस्या करके ब्रह्मका स्वरूप समझनेका प्रयत्न कर। पिताकी आज्ञानुसार भृगुने कुछ दिन और भी तप किया और तब निश्चय किया कि प्राण ही ब्रह्म है; क्योंकि प्राण द्वारा ही जीवन प्राप्त होता है अर्थात् जीवित प्राणीसे ही दूसरा जीवित प्राणी पैदा होता है, प्राण द्वारा ही जीवित रहता है और प्राणके अभावमें विनष्ट हो जाता है। ऐसा निश्चय कर वे पुनः पिताके समीप गये और अपनी उपलब्धिकी बात बतलायी। वरुणने पुनः भृगुको तप करनेके लिये आदेश दिया। भृगुने फिर तप कर मनको ब्रह्म स्थिर किया। वरुणने फिरसे तपस्या करनेको कहा। पुनः

अब अन्नका महत्व बतलाया जा रहा है। अन्न की निंदा कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अन्न ही प्राण है और प्राण अन्नमें ही प्रतिष्ठित है। क्योंकि अन्न द्वारा प्राणमें बलका संचार होता है और प्राण शक्ति द्वारा अन्नमय शरीरमें जीवनीशक्तिका संचार होता है। शरीर प्राणके रूपमें अन्नका भोक्ता है। शरीर, प्राणोंके अधीन होता है, और प्राणकी स्थिति अन्नसे है। अतएव अन्न और प्राण अन्योन्याश्रित हैं। इस प्रकार अन्नको तत्त्वतः जान लेने पर मनुष्य सब प्रकारसे सम्पन्न हो सकता है।

यहाँ जलको अन्नरूप बतलाया गया है; क्योंकि जलसे ही अन्न उत्पन्न होते हैं। फिर तेज (ज्योति) जल-स्वरूप अन्नको भक्षण करता है अर्थात् सूर्यकी किरणें और अग्नि ये दोनों जलका शोषण करते हैं। इसी प्रकार शरीरके भीतरका तेजः पदार्थ शरीरके भीतरी जलीय पदार्थका शोषण करता है। जलमें ज्योति प्रतिष्ठित है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जल तो स्वाभाविक शीतल होता है, उसमें तेज कैसे स्थित है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि समुद्र में बड़वानल रहता है, फिर आजकलके वैज्ञानिक भी जलसे बिजली उत्पन्न करते हैं। इससे सिद्ध है कि जलमें तेज स्थित है। और तेजमें जल स्थित है। क्योंकि सूर्य-किरणोंमें स्थित जल ही हमारे सामने वृष्टिके रूप बरसता है। अतएव अन्योन्याश्रित जल और तेज समस्त अन्न रूप खाद्य पदार्थोंके कारण हैं। इसलिये तेज और जल ही अन्नके रूपमें परिणत होते हैं। मनुष्य इस तत्त्वको जान लेने पर सब प्रकारके विज्ञानमें प्रतिष्ठित हो जाता है, साथ ही वह सब प्रकारकी भोग-सामग्रियोंसे भी सम्पन्न हो जाता है।

पृथ्वी ही अन्न है; क्योंकि जितने भी अन्न हैं, वे सब पृथ्वीसे ही उत्पन्न होते हैं। पृथ्वीको अपनेमें लीन कर लेनेवाला आकाश ही अन्नाद अर्थात् अन्नका भोक्ता है। पृथ्वी आकाशमें स्थित है और आकाश पृथ्वीमें स्थित है। इसलिये परस्पर एक-दूसरे आधार होनेके कारण आकाश और पृथ्वी अन्नके स्वरूप हैं। पंचभूतोंका आदि तत्त्व आकाश है और अन्तिम तत्त्व पृथ्वी है और बीचके तीनों तत्त्व इन्हींके अन्तर्गत हैं। जितने भी भोग्य-पदार्थ हैं—सबके सब इन्हीं पंचभूतोंके ही कार्य हैं। अतएव ये अन्नके रूपमें स्थित होनेके कारण अन्न ही अन्नमें प्रतिष्ठित है।

शिष्य अध्ययनकालमें गुरुके निकट अतिथि सत्कारका यह उपदेश प्राप्त होता है—'अतिथि देवो भव'। इस उपनिषद् वाणीमें पंचयज्ञके अन्तर्गत अतिथि सेवाको गृहस्थका श्रेष्ठ-धर्म माना है। जो अपने घर पर आये हुए अतिथिका आदर-सत्कार नहीं करते—उन्हें प्रीति पूर्वक भोजन आदि द्वारा सन्तुष्ट नहीं करते, उनको अन्नकी प्राप्ति नहीं होती। अन्नके द्वारा ही अतिथि-सेवा सम्भव है। अतएव यथेष्ट रूपमें अन्न उपार्जन करना कर्त्तव्य है।

हमारी इन्द्रियों द्वारा जो कुछ होता है, वह परमेश्वरकी शक्तिसे ही होता है। अर्थात् हाथोंमें काम करनेकी शक्ति, पैरोंमें चलनेकी शक्ति और आँखोंमें देखनेकी शक्ति—ये सब परमेश्वरकी ही शक्तिके अंश हैं। इसे आध्यात्मिक उपासना कहते हैं।

अन्नमें जो अन्न आदिको उत्पन्न करनेकी शक्ति है, बिजलीमें जो शक्ति है, सूर्य-चन्द्रमें जो प्रकाश शक्ति है, उपस्थमें जो सन्तानोत्पादनकी शक्ति है, आकाशमें जो सबको धारण करनेकी और सर्वव्यापकताकी शक्ति है एवं अन्य जो सब शक्तियाँ हैं—वे सब परमेश्वरकी ही अचिन्त्य शक्तिकी आंशिक अभिव्यक्तियाँ हैं। गीतामें भी दसवें अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने कहा है—जगतमें जो कुछ भी विभूति, शक्ति और शोभा-सम्पन्न पदार्थ है, वह मेरे ही तेजके एक अंशसे उत्पन्न है। इस प्रकार परमेश्वरकी सर्वव्यापकताको जाना जा सकता है।

सकाम उपासक विभिन्न प्रकारकी कामनाओंकी पूर्त्तिके लिये परमेश्वरकी विभिन्न विभूतियोंकी उपासना करते हैं और उसके द्वारा सांसारिक भोगोंको प्राप्त होनेकी अभिलाषा करते हैं । परन्तु परिणाममें वंचित ही होते हैं । वास्तवमें उन्हें कुछ भी लाभ नहीं होता । इसलिये निष्कामभावसे सर्वशक्तिमान परमेश्वरकी उपासना करनी चाहिए । परमात्मा समस्त प्राणियोंमें एक रूपसे विराजमान हैं । इस तत्त्वको जान लेने पर मनुष्य सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है । उसे किसी प्रकारका अभाव नहीं रह जाता । वह अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर सकता है । साथ ही वह सर्वत्र विचरण करता हुआ यह गान करता है—ये सम्पूर्ण भोग वस्तुएँ, इन सबका भोक्ता जीव और परमेश्वरमें अङ्ग-अङ्गीका सम्बन्ध है । मैं भी उन परमात्मासे अभिन्न परमात्मजातीय तत्त्व हूँ ।

—त्रिदण्डिस्वामी भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

पतित-ब्राह्मण और दरिद्र-नारायण

(डा० श्रीनलिनी रंजन सेनके विचारका प्रतिवाद)

सुप्रसिद्ध चिकित्सा व्यवसायी डा० नलिनी रंजन सेन महोदय द्वारा प्रेरित अँग्रेजीमें Truth एवं बंगला भाषामें "भारताजिर" नामक पत्रिकाओंका मैं नियमित पाठक हूँ । डा० महोदय शास्त्र-धर्म प्रचार करनेके लिये बहुत प्रयास कर रहे हैं । इस विषयमें श्रीनलिनीरंजन महोदय हमारे धन्यवादके पात्र हैं । किन्तु उनके द्वारा लिखित पुस्तकोंमें जो त्रुटियाँ भरी हुई हैं, वे उन त्रुटियोंको पुनः अपनी दृष्टिमें नहीं लाते । उन्होंने सनातन-धर्मकी भित्तिको देहात्म-बुद्धि द्वारा नष्ट-प्राय कर दिया है, जो आधुनिक हिन्दू समाजमें आसुरिक-वर्णाश्रम-धर्मके नामसे प्रसिद्ध हो रहा है । एवं जिनके द्वारा आज सनातन-धर्म जगतमें एक साम्प्रदायिक धर्मके रूपमें प्रचारित हो रहा है । जन्मगत हाड़-मांसका क्षुद्र हिसाब किताब ही नलिनी बाबूके धर्म प्रचारका विषय बन रहा है । जीव मात्र सनातन हैं, भगवान भी सनातन हैं; दोनों नित्य चेतन तत्त्वोंकी सच्चिदानन्द भूमि भी सनातन है । हम शास्त्रोंमें इसके प्रचुर प्रमाण देखते हैं । श्रीयुक्त नलिनी बाबू, जीव और भगवानकी नित्य-सनातन विलास भूमिको निर्विशेष निराकार बतलाकर, सड़े-गले मांसकी दुकान पर जहाँ भीषण दुर्गन्धके अतिरिक्त कोई भी उपादेय वस्तु वस्तु नहीं है, वहाँ सनातनधर्म पालनकी जो केवलमात्र डींग मारी जाती है, उसीके अनुमोदनमें वाह-वाह करनेके लिये अपना अर्थ एवं बुद्धि व्यय कर रहे हैं, वह हमारे विचारसे सिवा अपव्ययके और कुछ नहीं है ।

नलिनी बाबूके ही दलके नेता महापण्डित "करपात्रीजीने" कुछ दिन हुए काशीजीमें शंकरजीका विशाल मंदिर स्थापित किया है । उनके विचारसे काशीके विश्वनाथजीका भूत-प्रेतोंके साथ विशेष व्यवहार रहनेके कारण उनका दूसरा नाम भूतनाथ भी है । विश्वनाथजी आज भूत-प्रेतोंके स्पर्शसे अपवित्र हो गये हैं । देवादिदेव श्रीविश्वनाथजी परम वैष्णव हैं, वे भूत-प्रेतोंके स्पर्शसे अपवित्र हो गये हैं; अतएव करपात्रीजीने विश्वनाथजीका त्यागकर एक दूसरे शिव मंदिरकी स्थापना कर ली है—इसे तो शास्त्रोंमें अर्च्चा-विग्रहमें शिला (पत्थर) बुद्धि नामक अपराध माना गया है । करपात्रीजी अपवित्र शिवको मंत्र शक्ति द्वारा पवित्र करनेमें तो समर्थ है; किन्तु भूत-प्रेतोंको पवित्र करनेमें असमर्थ क्यों हैं ? क्या यही उनका

सनातन धर्म है ? और नलिनी बाबू उसी सनातन-धर्मके अनुगामी हैं !! भगवान् स्वयं अपने मुखार-विन्दसे कहते हैं कि जहाँ पर जितनी प्रकारकी पाप योनियाँ हैं; भूत-प्रेत हैं, स्त्री, वैश्य, शुद्र आदि हैं, वे सभी लोग यदि उनका (भगवानका) आश्रय-ग्रहण कर लें, तो श्रेष्ठ गति प्राप्त कर सकते हैं। सना-तन-धर्मके उद्देश्यसे हम लोग यही समझते हैं। सना-तन जीवको असनातन हाँड-माँसकी दुर्गन्धपूर्ण दुकानसे उठाकर सनातन श्रीहरिके पाद-पद्मोंमें पहुँचने की योग्यता प्रदान करना ही सनातन-धर्म है। भग-वान श्रीकृष्णने स्वयं इसी सनातन धर्मका प्रचार किया है एवं भगवान श्रीकृष्ण चैतन्यदेवने भी स्वयं उसीके आचार और प्रचार द्वारा जीवका कल्याण-मार्ग उन्मुक्त कर दिया है। हमारी यह इच्छा है कि—डा० नलिनी रंजन महोदय यदि श्रीमन्महाप्रभुके आनुगत्यमें शास्त्र-धर्मका प्रचार करते और भगवान को निराकार निर्विशेष एवं अपनेको कुरूप कदाकार होने पर भी साकार बतलानेकी बहादुरी न करते, तो वे वास्तविक सनातन-धर्मका प्रचार कर जगतका कुछ मंगल कर सकते थे। इस विषयमें उनके साथ अँग्रेजी भाषामें कुछ पत्र व्यवहार हुआ है। कलकत्ताके गोहत्या कसाई खानेमें एक ब्राह्मण-संतान मेडीकल आफीसर हैं, ये डा० नलिनी रंजन महोदयके मतानुसार ब्राह्मण है या नहीं ? एवं पण्डित नेहरू (जिनके लिये नलिनी बाबू समय असमय गाली-गलौच किया करते हैं वे भी) ब्राह्मण हैं या नहीं ? इस प्रकारके प्रश्न उदितकर उन्होंनेजो अँग्रेजी भाषामें पत्र व्यवहार किये हैं, पाठकोंकी अवगतिके लिये नीचे उन पत्रोंका अनुवाद दे रहा हूँ।

(धर्मरत्न श्रीनलिनीरंजन सेनगुप्त M.D. सभापति शास्त्र-धर्म-प्रचार सभाके दिनांक २३-२-५८ के अँगेजी पत्रका अनुवाद)

प्रिय महोदय ! आपके दिनांक २३-१-५८ का पत्र, जिसमें आपने अनुग्रह करके हमारी सभा एवं पुस्तकों की विशेष रूपसे प्रशंसा की है—प्राप्त कर हम आपको अपना आंतरिक धन्यवाद अवगत करा रहे हैं। हमारे इस कार्यमें आपकी सहायताका आश्वासन पाकर हम उत्साहित हुए। आपके समान महान् व्यक्ति-का मिलना इस कलियुगमें बहुत ही कठिन है। दूसरी तरफ, लोग इतने असाधु हो गये हैं कि अपने मुखसे अपनेको 'हिन्दू एवं हिन्दू-शास्त्रके मर्यादा रक्षक' कहने पर भी (क्योंकि हिन्दू-धर्मका अर्थ ही शास्त्र-धर्मसे है) हिन्दू शास्त्रोंकी अवज्ञा करते हैं—उनके अनुसार आचरण नहीं करते। 'हिन्दू' शब्दसे हिन्दू-शास्त्रकी मर्यादाका बोध होता है। अतएव हिन्दूका कर्त्तव्य है कि हिन्दू-शास्त्रोंकी मर्यादाकी रक्षा करें और यदि वे ऐसा न कर सकें, तो उन्हें चाहिये कि हिन्दू-शास्त्रोंकी विधि-निषेधोंकी तिलांजलि देकर अन्यत्र अहिन्दू सम्प्रदायमें शामिल हो जाँय। जिस प्रकार एक मुसलमान इसलाम शास्त्रोंका त्याग कर अमुसलमान हो जाता है, ईसाई बाईबिल न माननेके कारण ईसाई धर्मसे च्युत हो जाता है, बौद्ध बौद्धोंके धर्मग्रन्थ "त्रिपिटिका" का त्याग करने-से बौद्ध नहीं रहता,पारसी जिन्दा-भेस्ताका त्याग करने पर पारसी नहीं रहता अथवा कोई सिख ग्रन्थसाहब-को नहीं माननेसे सिख नहीं रहता, उसी प्रकार यदि एक हिन्दू हिन्दू-शास्त्रको नहीं मानता अथवा उसकी आज्ञाका ठीक-ठीक रूपमें पालन नहीं करता, तो वह निश्चय ही हिन्दू धर्ममें स्थान पानेका अधिकारी नहीं है। वह हिन्दूवेशमें वंचक-हिन्दू है—यथार्थ हिन्दू नहीं।

× × ×

इस प्रकार आधुनिक वंचक हिन्दुओंकी अपेक्षा, जो सब हिन्दू, हिन्दू-शास्त्रोंके सहित अपना सामं-जस्यन कर सकनेके कारण हिन्दू-धर्मका त्याग कर बौद्धवाद, जैनवाद, सिख समाज, आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि अन्य धर्मोंमें दीक्षित हो गये हैं, वे बहुत ही अच्छे हैं। हिन्दुओंको इस विषयमें कोई विशेष आपत्ति भी नहीं है व उसके लिये उनको कोई दुःख भी नहीं है।

आपने हमसे पुनः प्रश्न किया है कि हिन्दू या ब्राह्मण जन्मसे सिद्ध होते हैं अथवा धर्मसे ? इस विषयमें आपने हमसे स्पष्ट मीमांसा करनेके लिये लिखा है। हम आपको इसके लिये अतिशय धन्यवाद देते हैं। इस विषयमें हम लोग आपसे ही एक परि-प्रश्न करते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने पिताकी आज्ञाका उल्लंघन कर उच्छृङ्खल हो जाय, तो क्या वह तब भी अपने पिताका पुत्र नहीं कहलावेगा ? अर्थात् तब भी लोग यह न कहेंगे कि वह अमुकका पुत्र है। न्यायके विचारमें पुत्र कितना भी पतित एवं हिताहित विवेकशून्य क्यों न हो, वह सर्वदा अपने पिताका ही पुत्र रहेगा। यदि पिता नशाखोर, जुआरी और वेश्यागामी हो, तब क्या वह अपनी सन्तानके पिताके पदसे हट कर, दादा-परदादा हो जायेगा अथवा भ्राता हो जायेगा ? क्या उक्त कारणोंसे पिता-पुत्रका नित्य सम्बन्ध भी समाप्त हो जायेगा ? यदि यह बात असम्भव है अथवा पागलपन व हास्यास्पद है और उसे कोई बुद्धिमान और मूर्ख व्यक्ति स्वीकार नहीं करता है अथवा वह कानूनके विरुद्ध है, तो एक ब्राह्मणका पुत्र निश्चय ही ब्राह्मण क्यों नहीं माना जायगा ? मनुस्मृति आदि शास्त्रोंमें भी इस प्रकारके निर्देश हैं कि ब्राह्मणके सन्तान सदा ब्राह्मण ही होते है, जब तक उनका देहान्त नहीं हो जाता, वे ब्राह्मण ही बने रहेंगे। भले ही वे दुराचारी और चरित्रहीन ही क्यों न हों। उनको 'विप्राधम' अथवा पतित ब्राह्मण कहा जा सकता है; किन्तु जब तक वे अपनेको ब्राह्मण होना अस्वीकार नहीं करते, तब तक वे ब्राह्मण ही हैं। अतएव नेहरूजी अथवा कसाईखानेका डाक्टर घूस लेकर गोहत्या कराने पर भी ब्राह्मण कुलमें जन्म लेनेके कारण सदैव ब्राह्मण ही रहेंगे। हाँ, ऐसे ब्राह्मणोंको पतित-ब्राह्मण कहा जा सकता है अथवा ब्राह्मण समाजसे बाहर किया जा सकता है। उन लोगोंके साथ सामाजिक व्यवहार बन्द किये जा सकते हैं; किन्तु जब तक वे अपनेको अब्राह्मण स्वीकार नहीं करते, तब तक वे झूठ या सच ब्राह्मण ही रहेंगे। उन पतित ब्राह्मणोंको दण्डविधि द्वारा अथवा शास्त्रीय प्रायश्चित्त विधिद्वारा संस्कृत कर, उन्हें पुनः ब्राह्मण समाजमें लाया जा सकता है।

क्या आप गुण-कर्म-विभागका अर्थ यह समझते हैं कि ब्राह्मण जन्म द्वारा नहीं बल्कि कर्मद्वारा ही सिद्ध होगा ? कृपया आप इस विषयमें हमारी "Cast system and suppliment" नामक पुस्तकका भली भाँति अध्ययन एवं मनन करेंगे। विशेषतः पुस्तकके पृष्ठ ६, ५६,६० और ८३ पर हम आपका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित करते हैं। यदि आप जन्मद्वारा वर्ण विभाग स्वीकार नहीं करते हैं, तो आप ही बतलाइये कि नवजात-शिशु और बालकोंको किस वर्णमें रक्खेंगे ? और जिस वर्णकी संज्ञा आप देंगे, उसे देनेका अधिकार किसको है ? अथवा उस प्रकारकी संज्ञा और विचारको बिना किसी आपत्तिके कौन स्वीकार करेगा अथवा ग्रहण करेगा ? इस प्रकारसे तो सब-के-सब उच्च वर्णमें प्रतिष्ठित होनेकी चेष्टा करेंगे। प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें, एक दिनमें भी कितने ही बार गुणोंका परिवर्त्तन देखा जाता है। ऐसी अवस्थामें कौन व्यक्ति किस विचारसे किसी व्यक्तिका वर्ण निर्धारित करेगा ? अतः गुण-कर्मद्वारा कदापि वर्ण निर्धारित नहीं किया जा सकता है। और भी देखिये, जगत्में योनि-विचार, जाति-विचार, स्वदेश-विचार, शब्द-विचार, आकृति-प्रकृति विचार, रक्त-विभाग विचार, वंश-विचार—ये सब विचार पितासे पुत्रमें इसी प्रकार चल रहे हैं। तब वर्ण-विचार भी उसी प्रकार क्यों नहीं चल सकता ? हम यह स्वीकार करते हैं कि 'जातिमात्रोपजीविगण' अत्यन्त घृणित हैं और ऐसे ब्राह्मणको हम लोग घृणित-ब्राह्मण कहते हैं। परन्तु फिर भी वे ब्राह्मण ही रहेंगे—सिद्धान्त यही कहता है। मैं आशा करता हूँ इस विषयमें आपके सन्देह को दूर करनेके लिये हमने अनेक प्रकारकी युक्तियाँ दिखलायी हैं। इतने पर भी आपका सन्देह बना रहे, तो आप लिखेंगे, हम सदैव आपकी सेवाके लिये

प्रस्तुत हैं। हम ऐसा सोचते हैं कि आप एक बार कलकत्ता आकर इस विषयमें वर्तालाप करें तो बड़ी खुशीकी बात होगी। क्योंकि साक्षात् वर्तालापमें हम आपके समस्त प्रकारके सन्देहोंको दूर कर सकेंगे।इति'

उक्त पत्रका अँग्रेजी भाषामें मैंने जो उत्तर दिया है, उसे भी अनुवाद कर यहाँ पाठकोंके सम्मुख विचारार्थ उपस्थित कर रहा हूँ। दुःखका विषय है कि मैं निम्नलिखित पत्रका उत्तर आज तक भी न पा सका। इससे तो यही समझा जा सकता है कि श्रीनलिनीबाबू मेरी युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणोंसे सन्तुष्ट हैं तथा वे यह भी स्वीकार करते हैं कि 'पतित-ब्राह्मण' या 'नकल-ब्राह्मण' उक्तियाँ भी दरिद्रनारायणकी भाँति सर्वथा कल्पित संज्ञामात्र हैं, शास्त्रीय-संज्ञा नहीं हैं।

(पण्डित श्रीयुक्त अभयचरण भक्तिवेदान्त महोदय द्वारा अँग्रेजी भाषामें लिखित उत्तरका अनुवाद)

प्रिय महोदय ! मैंने आपके दिनाङ्क २३-२-५८ का पत्र यथासमय पर प्राप्तकर उसे आद्योपान्त पढ़कर अत्यन्त ही हताश हुआ। आपने सनातन-धर्म-प्रचार करनेके उद्देश्यसे जिस शास्त्र-धर्म-प्रचार सभाकी स्थापना की है, वह मनुष्य जातिका उपकार कर सकेगी—इस विचारसे तो यह कार्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ; परन्तु इस महत् कार्यके सम्पादन होनेकी सम्भावनाके विपक्षमें मेरी जो शङ्काएँ आप लोगोंके प्रति थीं, वे आपके इस पत्र द्वारा और भी गम्भीर रूपमें ठीक ही प्रमाणित हुई हैं। मैं विशेष सम्मानके साथ आपका मतवाद स्वीकार करनेमें असहमत हूँ, क्योंकि मेरा यह स्थिर सिद्धान्त है कि आपका यह देहात्मक बुद्धि-मूलक सिद्धान्त कभी भी उच्चादर्श स्थापित करनेमें सफल नहीं हो सकता। हाड़-माँसकी थैली—सड़ने गलनेवाली इस देहपर जिनकी इतनी आसक्ति है, उनका सिद्धान्त भी आसुरिक ही होगा। क्योंकि अव्यय-आत्मा या ब्रह्म-वस्तुके विचारका अभाव ही सर्वापेक्षा अज्ञताका बोधक है। मेरे विचारसे आप लोगोंका इस प्रकारका 'आसुरिक वर्णाश्रम' विचार ही जगत्की दुर्दशाका कारण है और मुझे दुःख इस बातका है कि आप लोगोंके इस बृहत् कार्यमें संकीर्णता पूर्णमात्रामें विद्यमान है।

पत्रके 'पुनश्च' (P. S.) विभागमें आपने जिन-जिन युक्तियोंको दिखानेकी चेष्टा की है, वे सब आपके पत्रकी प्रारम्भिक पंक्तियोंके सर्वथा विपरीत हैं।

आपने पत्रके प्रारम्भमें बहुत ही विचक्षणताके साथ कहा है कि—'आपके समान महान् व्यक्तिका मिलना इस कलियुगमें बहुत ही कठिन है, दूसरी ओर लोग इतने असाधु हो गये हैं कि वे अपने मुख से अपनेको "हिन्दू एवं हिन्दू शास्त्रोंके मर्यादा रक्षक" कहने पर भी (कारण हिन्दूका अर्थ ही शास्त्र धर्मसे है) वे लोग हिन्दू शास्त्रोंकी अवज्ञा करते हैं, उनके अनुसार आचरण नहीं करते। हिन्दू शब्दसे हिन्दू शास्त्रकी मर्यादा रक्षकका बोध होता है। अतएव हिन्दूका कर्त्तव्य है कि हिन्दू शास्त्रोंकी मर्यादाकी रक्षा करें। और यदि ऐसा न करे तो उन्हें चाहिये कि वे हिन्दू शास्त्रोंकी विधि-निषेधोंकी तिलांजली देकर अन्यत्र हिन्दू सम्प्रदायमें सम्मिलित हो जाँय।'

आपने ये सब बातें कहते समय पण्डित नेहरुके जैसे व्यक्तिके प्रति कटाक्ष किया है तथा उनको भी अन्यान्य हिन्दुओंके साथ "असत् वंचक" कहा है। किन्तु जब मैं इस प्रकारके हिन्दुओं और पण्डितोंने इसके सम्बन्धमें आपसे जिज्ञासा करता हूँ कि आप इन विपथगामी लोगोंको ब्राह्मण मानते हैं या नहीं ? तब आप अपने पूर्व कथनके विपरीत कहते हैं कि वे सब "असत् वंचक" निरीह व्यक्ति भी हिन्दू सन्तान व ब्राह्मण-सन्तान ही हैं। क्या आपकी इस प्रकार की परस्पर विरोधी बातें दोषयुक्त नहीं हैं ? यदि आप ऐसे-ऐसे विपथगामी हिन्दू और ब्राह्मणोंके दोषों को देखते हुए भी उन्हें ब्राह्मण और हिन्दू स्वीकार करते हैं, तब आप जो साधारण विपथगामी हिन्दुओं

को "असत् वंचक" कहते हैं, उसकी सार्थकता क्या है? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि "ब्राह्मण पर्याय" हिन्दू पर्याय" से बाहर एक पृथक् समाज है? क्या ब्राह्मण हिन्दू शास्त्रोंके शासनाधीन नहीं हैं? इस प्रकारकी उक्तियोंका मूल्य ही क्या है? आप कहते हैं—कि पतित-ब्राह्मण (यह कथन विरुद्ध अर्थ बोधक है, क्योंकि "ब्राह्मण" शब्दका अर्थ ब्रह्म ज्ञानसे सम्पन्न होता है। अतएव एक व्यक्ति या तो ब्राह्मण-पण्डित ही होगा, अथवा पतित होगा, किन्तु वह पतित और ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञान सम्पन्न, दोनों एक साथ कैसे हो सकता है?) होनेसे भी जब तक वह अपनेको ब्राह्मण होना अस्वीकार नहीं करता, तब तक वह ब्राह्मण ही रहेगा—यदि आपका यह सिद्धान्त है, तब तो साधारण हिन्दुओंको जो ठीक प्रकारसे शास्त्र विचार ग्रहण नहीं करने, उन्हें 'असत् वंचक' कहनेका आपको क्या अधिकार है? आजकल जिस प्रकार सोनेकी पत्थरकी कटोरीकी भाँति दरिद्र-नारायण (?) आदि अपशब्दोंका प्रयोग होता है, आपने भी उसी प्रकार "पतित-ब्राह्मण","दुराचारी ब्राह्मण", "मिथ्या-ब्राह्मण" आदि अनेक प्रकारके परस्पर विरुद्ध-अर्थ-बोधक शब्दोंका आविष्कार किये हैं। सनातन-शास्त्र धर्म प्रचारकोंके लिये विरुद्धार्थ-साधक शब्दोंकी कोई सार्थकता नहीं है। आपकी युक्तियोंकी असारता ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार आप एक व्यक्ति को "असत्-वंचक" कह कर तुरन्त उसी समय पुनः उसी व्यक्तिको ब्राह्मणका उच्चपद, जिसे शास्त्रोंमें महान् उच्चादर्श माना गया है; प्रदान करनेको अतिशय व्यग्र होते हैं। इस प्रकारकी अपचेष्टा गाँधीके "हरिजन" आन्दोलनसे किसी अंशमें कम नहीं। जिस प्रकार उन्होंने चमारों और मेहतरोंको हरिजन-मार्का देकर चलाना चाहा, उसी प्रकार आप भी एक पतित व्यक्तिको ब्राह्मण-मार्का देकर चलाना चाहते हैं। यदि एक व्यक्ति अपनेको ब्राह्मण बतला कर कुछ विरुद्धार्थ-पोषक मूर्ख लोगोंके निकट ब्राह्मणका सम्मान प्राप्त होता है, तो वह असत्-वंचक व्यक्ति ब्राह्मणकी पदवी ग्रहण करना क्यों अस्वीकार करेगा? आपके स्त्री-समाजके न्यायालंकारोंको हम कभी भी स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं हैं।

मैं यह नहीं समझ सका कि श्रीमद्भगवद्गीता-में गुण और कर्मोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णने जो वर्ण विभागका निर्देश किये हैं, उसे आप क्यों नहीं स्वीकार करते? इस सड़े-गले हाड़-माँससे बने शरीरको जिसे आपने बड़े जोरोंसे पकड़ रखा है—श्रीगीतामें उसे कुछ भी महत्व नहीं दिया है। भगवद्गीतामें तो इस नाशवान् शरीरके प्रति आसक्तिको नष्ट करनेके लिये ही आदिसे अन्त तक उपदेश है। किन्तु बड़े ही खेदका विषय है कि इस सड़ने-गलने वाले शरीरके प्रतिही आपके सारे उपदेश हैं। मैं आपसे यह अनुरोध करता हूँ कि आप इस पत्रके पूर्वोक्त श्लोककी अच्छी प्रकारसे आलोचना करेंगे।

आपने एक स्त्रियों जैसे तर्ककी अवतारणा करके हद कर दी है कि मैं (भक्ति वेदान्त) किस प्रकारसे एक व्यक्तिको जो भले ही अत्यन्त दुर्जन है—पितृ-सम्बन्धसे विच्युत कर सकता हूँ। मेरा कथन कदापि ऐसा नहीं है। मैं तो अपने जीवनकी अन्तिम सांस तक किसी भी व्यक्तिका सम्बन्ध उसके पितासे तोड़नेको नहीं कह सकता। प्रत्येक जीव चाहे वह मनुष्य हो, चाण्डाल हो, कुत्ता हो अथवा ब्राह्मण हो—सभी भगवानकी संतान हैं—हम इसे अच्छी तरह जानते हैं। परन्तु शास्त्रोंमें जिन ब्राह्मण-वैष्णवोंको सबसे उच्च बतलाया है, उनके साथ कुत्तों और सूकरोंको एक आसन पर बैठानेके लिये प्रस्तुत नहीं हूँ। शास्त्रोंमें जिनको असुर बतलाया गया है, वे भी भगवानकी ही संतान हैं। फिर भी असुर और देवता क्या तुल्य हैं? असुर—असुर ही रहेंगे, देवता-देवता ही रहेंगे। पितृ-सम्बन्धमें मैं और भी कहना चाहता हूँ कि श्रीनलिनी रंजन बाबू M. D. के पुत्रको नलिनी बाबूको पिता कहनेका सम्पूर्ण अधिकार

रहने पर भी यदि उनका पुत्र स्वयं M. D. परीक्षामें पास नहीं है, तब वह M. D. पिताका पुत्र होने पर भी अपनेको M. D. कहलानेका अधिकारी नहीं है। यदि हाईकोर्टके न्यायाधीशका अशिक्षित मूर्ख पुत्र, आवश्यक कोर्स पास किये बिना ही अपनेको न्यायाधीश कहनेकी धृष्टता करे, तो क्या आप उसकी ऐसी धृष्टताको स्वीकार करेंगे? उसी प्रकार ब्राह्मण द्वारा उत्पादित शरीर भी ब्राह्मण नहीं है—यही मूल सिद्धान्त है। यदि यह शरीर ही ब्राह्मण है, तो इस शरीरको जब इसी शरीरसे उत्पन्न हुई लड़के-लड़कियाँ चिताग्निमें जला कर भस्म कर देती हैं, तब उन लोगोंको फाँसी क्यों नहीं दी जाती? अथवा उन लोगोंको ब्रह्म-हत्याका प्रायश्चित क्यों नहीं करना पड़ता? इससे सिद्ध है कि वास्तवमें शरीर कभी भी ब्राह्मण नहीं है। इतनी सरल बातको न समझना बड़े आश्चर्यकी बात है। यदि यह शरीर ही ब्राह्मण होता, तो यह ब्रह्म-वस्तु आत्माके निर्गत होने पर भी ब्राह्मण ही बना रहता। ब्राह्मणों और शूद्रोंके शरीर एक ही प्रकारके उपादनोंसे एक ही प्रकृतिके नियमोंके अन्तर्गत बने होते हैं। किन्तु ब्राह्मणके शरीरको प्रारम्भसे ही पवित्र करनेके लिये जो संस्कार व प्रक्रियाएँ अवलम्बित होती हैं, वह शूद्रोंके शरीरके सम्बन्धमें संभव नहीं है। अतएव वर्त्तमान समयमें गर्भाधान आदि संस्कार अधिकांश क्षेत्रोंमें अप्रचलित होनेके कारण उत्तम ब्राह्मण भी संस्कार-रहित शरीर उत्पन्न करने पर वह शरीर शूद्र शरीरसे भिन्न और कुछ नहीं है। कलियुगमें इस प्रकारके शरीर उत्पन्न होनेके कारण प्रायः शरीर शूद्र हैं। "जन्मना जायते शूद्रः" आदि शास्त्र वचनोंके अनुसार जन्मसे सभी शूद्र हैं। बाराह पुराणमें भी यह बात स्पष्ट ही कही गयी है कि "राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु" कलिकालमें सुयोग पाकर पूर्व जन्ममें जो राक्षस थे, वे ही उत्तम कुल ब्राह्मण योनिमें संस्कार वर्जित हो उत्पन्न होंगे। "कलौ शूद्रः सम्भवात्" शास्त्रोंका यही सिद्धान्त है। उपरोक्त कथित राक्षसोंका कार्य होगा—भगवानको निराकर बतला कर उनकी सत्ताको भी उड़ा देनेकी चेष्टा करना, गुरु आचार्योंकी अवज्ञा करना, शास्त्रोंकी निंदा करना। यही नहीं, जो शास्त्र-विचार ग्रहण करनेकी चेष्टा करेंगे, उनका विरोध करना और उनकी बुद्धिको बदलनेकी चेष्टा करना भी उनका प्रधान व्यवसाय होगा। श्रीमद्भागवत महापुराणने स्पष्ट घोषणा की है कि "विप्रत्वे सूत्रमेवहि" अर्थात् गलेमें एक मोटासा सूती धागाका रहना ही कलिकाल में ब्राह्मणका परिचय होगा। आचार्यगण ऐसे यज्ञोपवीतको कोई मूल्य नहीं देते। वे तो कलिकाल में वैदिकी दीक्षाके बदले पाँचरात्रिकी दीक्षा द्वारा समस्त स्वभाव वाले व्यक्तियोंको ब्राह्मणका अधिकार प्राप्त करनेके लिये कृपापूर्वक सहायता करते हैं।

आपने मुझसे पूछा है कि मैं नव-प्रसूत शिशुको कौनसा वर्ण दूँगा? इस प्रश्नका उत्तर मैंने ऊपरकी विवृत्तिमें देनेकी चेष्टा की है, फिर भी यहाँ और भी स्पष्ट रूपमें बतला देना चाहता हूँ कि जिस नव-प्रसूत शिशुका गर्भाधान संस्कार नहीं हुआ है, वह शिशु ब्राह्मण द्वारा (?) उत्पन्न होने पर भी शूद्र वर्णका निश्चित है। इसके विषयमें "जन्मना जायते शूद्रः" इत्यादि शास्त्रके भूरि-भूरि प्रमाण हैं। शास्त्रोंमें इस प्रकारके असंस्कृत सन्तानको ब्राह्मण नहीं कहा गया है। किन्तु कलिकालमें इस प्रकारकी सन्तानें ही अधिक पैदा होती हैं। फिर भी उनको पाँचरात्रिक विधिसे संस्कृत करनेका सुयोग दिया गया है। एवं उसी विधिसे कोई भी व्यक्ति द्विजत्व प्राप्त कर सकता है—'तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्'।

आपके मतानुसार यदि जन्मसे ही ब्राह्मण होनेका अधिकार होता, तो "द्विजत्व" आदि शब्दों द्वारा 'द्वितीय जन्म'का उल्लेख करनेका कोई प्रयोजन नहीं होता। द्विजत्व प्राप्तिके पश्चात् ही आचार्यकी कृपासे शिष्य वेद पाठका अधिकारी होता है, अन्यथा उक्त विधिका उल्लंघन कर यदि शूद्र वेद पाठ करें तो वह

"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" इस विचारको परित्याग करके पाषण्ड मतको ग्रहण करेगा अर्थात् भगवानको मनुष्य और मनुष्यको भगवान् कल्पना करेगा अथवा भगवानको हवामें उड़ा कर स्वयं भगवान बननेकी धृष्टता करेगा। अतएव उपासना-विहीन शूद्र वेद-पाठ करनेका अधिकारी नहीं हो सकता, एवं वेदपाठी विप्र जब तक ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसको ब्राह्मण नहीं स्वीकार किया जा सकता। क्रमोन्नतिके मार्गमें क्षत्रिय और वैश्य भी ब्राह्मण हो सकते हैं; किन्तु ब्रह्मज्ञान प्राप्त न होने तक वे ब्राह्मण संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकते। अतएव आप शास्त्र-धर्म-प्रचार कार्यमें नियुक्त होकर पतितको ब्राह्मण बतलाने-की अथवा उसी प्रकार एक उच्चपदस्थ ब्राह्मण पण्डितको 'असत्-वंचक' सम्प्रदायके साथ समान बतलानेकी चेष्टा नहीं करेंगे।

एक ही परतत्त्व साधकोंके अधिकारके अनुसार तीन प्रकारका होता है। तीन परतत्त्व हैं—(१) निर्वि-शेष ब्रह्म, (२) सर्वभूत स्थित परमात्मा एवं (३) षडैश्वर्य पूर्ण भगवान श्रीहरि। जो लोग परतत्त्वकी आंशिक अनुभूति लाभ करते हैं वे निर्विशेष ब्रह्म या सर्वभूत स्थित परमात्माकी उपलब्धि करते हैं। ये लोग ही ब्राह्मण कहलाते हैं। किन्तु जो लोग परतत्त्वको सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दके रूपमें—'रसो वै सः"—स्वरूपमें उपलब्धि करते हैं, वे वैष्णव या भागवत कहलाते हैं। उसी प्रकारके वैष्णव या भागवतजन जब और भी उन्नत स्थितिमें पहुँच कर अनादि आदि पुरुष श्रीकृष्णको ही परतत्त्वके रूपमें दर्शन करते हैं, तब वे कार्ष्ण या कृष्णैक-शरण होते हैं। ऐसे परम उन्नत भक्तजन ऐसी उपलब्धि करते हैं कि—'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' अर्थात् कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं। ऐसी अनुभूतिसे सम्पन्न व्यक्ति ही सर्वोत्तम और श्रेष्ठ ब्राह्मण है।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी आम्नाय-परम्परामें अनेक प्रसिद्ध आचार्य आविर्भूत हुए हैं; जो तथा-कथित ब्राह्मण परिवारमें प्रकट नहीं हुए हैं। उनमेंसे कतिपय आचार्योंके नाम हैं—श्रीनरोत्तमदास ठाकुर, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी, श्रील हरिदास ठाकुर, श्री-बलदेव विद्याभूषण (गोविन्द भाष्यके रचयिता), श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी। इन सभी आचार्योंने ब्राह्मण-कुलमें आविर्भूत न होने पर भी अनेकों व्यक्तियोंको दया करके शिष्यके रूपमें ग्रहण किये हैं। श्रील हरि-दास ठाकुर किसी भव्य मुसलमान कुलमें आविर्भूत हुए थे। फिर भी श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजीने उनको नामाचार्यकी पदवी दी थी। महाप्रभु जिस नाम प्रचारके लिये इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे—उस समय अपने उस सर्वश्रेष्ठ कार्यका भार उन्होंने श्रील हरिदास ठाकुरको ही सौंप कर एक महान् आदर्शकी स्थापना की है। क्या महाप्रभुजीने यह शास्त्र विरुद्ध कार्य किया है? कभी नहीं, उन्होंने जो भी कार्य किये हैं—वे सब शास्त्रानुमोदित एवं शास्त्रों-के निगूढ़ तात्पर्यज्ञापक हैं। श्रीमद्भागवतके सिद्धान्त द्वारा भी यही प्रमाणित होता है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी वर्णका क्यों न हो, यदि वह श्रीहरिका शुद्ध नाम उच्चारण करता है, तो वह तत्क्षण उत्तम ब्राह्मण कहलानेका अधिकारी है। यज्ञादिके अधिकार स्वतः उसका आश्रय ले लेते हैं।

श्रीमहाप्रभुजी ही वास्तविक शास्त्र-धर्म प्रचार किये हैं। उनका आदेश है कि पृथ्वीमें सर्वत्र उनका ही शास्त्र-प्रचार-धर्म ही प्रवर्तित होगा। अतएव यदि आप वास्तवमें शास्त्र-धर्म-प्रचार करना चाहते हैं, तो आपसे मेरा अनुरोध है कि आप भी श्रीमन्महाप्रभु-का पदांकानुसरण करेंगे। इस प्रकार शास्त्र-धर्मके प्रचारका जगतमें सर्वत्र ही आदर होगा। ऐसे शास्त्र-धर्म प्रचारद्वारा ही जगतका मङ्गल होगा तथा हिन्दू धर्मकी गरिमा सर्वत्र विघोषित होगी। इसलिये आवश्यक होने पर नेहरू और दूसरे-दूसरे कदाचार सम्पन्न व्यक्तियोंको त्याग कर दूसरे देशोंके सदाचार सम्पन्न लोगोंको भी ब्राह्मण स्वीकार करना होगा। यदि इस प्रकार हिन्दू धर्मका प्रचार नहीं करेंगे, तो

हिन्दू-समाजमें क्रमशः अधिकाधिक संख्यामें पतित ब्राह्मणों व मिथ्या ब्राह्मणोंकी सृष्टि कर सम्पूर्ण प्रतिष्ठानको ही म्लेच्छमय कर अन्तमें एक दूसरे पाकिस्तानका निर्माण मात्र करेंगे। इसके लिये पहिलेसे ही सावधानी वर्तनेकी आवश्यकता है। जो लोग हिन्दू धर्मका परित्याग कर दूसरे-दूसरे धर्मोंमें दीक्षित हो गये हैं, उन लोगोंके लिये आपके हृदयमें तनिक भी दुःख नहीं है; किन्तु मैं कहता हूँ कि उनके लिये सिर पीट कर जोरोंसे रोनेकी आवश्यकता है। नहीं तो तथाकथित म्लेच्छोंका ही क्रम-विकाश होता रहेगा। इससे कोई लाभ नहीं होगा।

आप लोगोंको अपनी विचार-धारा बदलनी होगी तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुका पदांकानुसरण करना होगा। उनकी (महाप्रभुकी) इच्छा है कि पृथ्वीमें सर्वत्र ही कृष्ण-कथाका प्रचार हो। शुद्ध कृष्ण-कथाके प्रचारसे ही जगतमें यथार्थ सुख-शान्ति आ सकती है। उनकी कृपासे ही ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, यवन और म्लेच्छ—सभी परम उन्नतिके पथ पर अग्रसर हो सकते हैं "किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय"—येह कृष्ण तत्त्ववेत्ता सोई गुरु हय" अर्थात् ब्राह्मण हो या शूद्र हो अथवा संन्यासी ही क्यों न हो, कृष्ण-तत्त्व जाननेवाला व्यक्ति ही गुरु है। वैसे उदार चरित्रवाले व्यक्ति द्वारा ही शास्त्र प्रचार सिद्ध होगा। आपने अपनी पुस्तकोंमें हिन्दू धर्मकी सर्वश्रेष्ठता प्रदर्शित की है; किन्तु यदि उस श्रेष्ठ धर्मको जगतके लोगोंसे ग्रहण नहीं करा सकते, तो वह उत्तम वस्तु बक्समें ही बन्द रह जायेगी। उसकी सुगन्धीका कोई भी आस्वादन नहीं कर पायेगा।

उपसंहारमें मैं आपसे पुनः अनुरोध करूँगा कि महाप्रभुके पदांकानुसरण करके ही आप लोग शास्त्र-धर्मका प्रचार करें, क्योंकि उनकी कृपा होनेसे एक छोटासा बालक भी अथवा अज्ञ व्यक्ति भी जगत रूपी दुस्तर समुद्रको बिना प्रयास ही पार कर सकता है।

श्रीचैतन्य प्रभुं वन्दे बालोऽपि यदनुग्रहात्।
तरेन्नानामत-ग्राहव्याप्तं सिद्धान्तसागरम् ॥

आशा है, विचार क्षेत्रमें मेरे शब्दोंसे आपको किसी प्रकारका आघात लगा हो, तो क्षमा करेंगे। इति।

—श्रीअभयचरण भक्तिवेदान्त, एडिटर, बैक-टू-गौड-हेड।
(श्रीगौड़ीय-पत्रिकासे अनुदित)

श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजी

राधाविनोद विहारी हमारे।
अरुणाधर बिम्बाफल जैसे, प्राणशुक नयना रतनारे॥
क्षुद्रकिंकिणी कटितट सोहै, पीत बसन उर माला धारे।
पग पैंजनिया हस्त मुरलिया, वाम राधिका धारे॥
कंसटील पै वास करत हैं, केशव-प्राण पियारे।
दास सत्य निरखत चाहत, नित गौर राधिका कारे॥

—श्रीसत्यपाल ब्रह्मचारी

सुख

आज मृत्युलोकमें अशान्तिके बादल क्यों छाये हैं ? सब लोग अपनी परिस्थितिसे असन्तुष्ट और दुःखी क्यों दिखलायी पड़ते हैं ? इनको क्या रोग है ? ये किस लिये इधर उधर बेचैन होकर भटक रहे हैं ? दिन-रात कठोर परिश्रम करते हैं; आखिर यह सब क्यों ? कोई विद्यार्थी बना विद्या-अध्ययनमें लगा है; कोई खेल-कूद, नाच, तमाशा सब प्रकारके मनोरंजनोंको भूलकर चौबीसों घन्टे अपनी पुस्तकों में ही खोया रहता है। वह सरस्वती माताकी वेदी पर अपना स्वास्थ्य, नेत्रोंकी ज्योति, मुखकी कान्ति-सब कुछ अर्पणकर केवल परीक्षामें किसी प्रकार प्रथम आनेका स्वप्न देखा करता है। परन्तु किस-लिये ? कोई धन उपार्जन करनेके लिये व्यवसायमें अनेकों कष्टोंको झेलता है, देश-विदेशमें भ्रमण कर नाना-प्रकारकी युक्तियोंसे झूठ-सच बोलकर धन संग्रह करता है, पैसा-पैसा जोड़कर सोने-चाँदीका ढेर लगा देता है, फिर भी मरते दमतक निन्नानवेके फेर में ही पड़ा रहता है। परन्तु किसलिये ? कोई वेश्याके प्रेममें दिवाना हो रहा है, अपनी प्रेमिकाके पीछे तन-मन, धन—सब कुछ गवाँकर निर्लज्ज होकर दर-दर भीख माँगनेको तैयार है। परन्तु किसलिये ? कोई यज्ञ, दानादि करके पुण्य-संग्रह करता है, भूखोंको भोजन देता है, मरीजोंको दवा बाँटता है, अनाथा-लय, विद्यालय, शिवालय आदि स्थापित करता है, देवी-देवताओंकी पूजा करता है। परन्तु किसलिये ? कोई त्यागी बनकर अपने प्यारे पुत्र-परिवार और धन-सम्पत्ति—सबको त्यागकर शरीरमें भस्म रमा, किसी गुफामें बैठकर कठिन तपस्या करता है; शरीर को भाँति-भाँतिसे कष्ट देता है; परन्तु किसलिये ? इनको आखिर चाहिये क्या ? ये इतना परिश्रम क्यों उठाते हैं ? इनकी अशान्तिका कारण क्या है ? क्या इनकी कोई बहुमूल्य वस्तु खो गयी है, जिसकी खोजमें ये लोग व्याकुल होकर इधर-उधर भटक रहे हैं ?

हाँ! अवश्य ही ये लोग किसी वस्तुकी ही खोजमें हैं। वह वस्तु क्या है—सुख। सभी सुख चाहते हैं,जिसे जिस मार्गपर सुख दीखता है, वह उसी पर तन, मन से दौड़ रहा है। जीव स्वभावसे ही सुख चाहता है। सुखकेलिये ही वह सब कुछ करता है। संसारके समस्त प्राणियोंका उद्देश्य एकमात्र सुख ही है। साधारणसे साधारण कार्य भी सुख पानेकी इच्छासे प्रेरित होकर ही किये जाते हैं। खाना, पीना, सोना, जागना, चलना, फिरना-सब कुछ सुखके लिये ही होता है।

छोटे-बड़े सभी जीव सुखके लिये नाना प्रकारकी भोग-सामग्रियाँ संग्रह करते हैं। पक्षी सुखके लिये घोंसला बनाते हैं। शेर आदि जंगली जानवर सुख के लिये शिकार करते हैं। चींटी सुखके लिये दिन-रात परिश्रम कर अनाजका एक-एक दाना बीनती है। मधुमक्खियाँ सुखसे लिये फूलोंसे शहद संग्रह करती हैं। मनुष्य सुखके लिये धन-कमाते हैं, महल और मकान बनाते हैं, विवाह करते हैं, संतान उत्पन्न कर उनका पालन-पोषण करते हैं तथा नाम और यश पैदा करते हैं। परन्तु भोगकी सारी साम-ग्रियोंका संग्रह कर लेने पर भी वे सुखी नहीं दीख पड़ते; वे तब भी अशान्त ही दिखलायी पड़ते हैं। जो प्रतिदिन सुबहसे शाम तक कड़ी मेहनत करके, अपना खून और पसीना एक करके किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करते है, वे भी दुःखी दिख-लायी पड़ते हैं और जो मखमलके गद्दों पर बैठे नौकरों पर हुक्म चलाते हैं, मित्रोंके साथ विषय-भोगोंमें मत्त रहते हैं, वे भी अशान्त ही दीखते हैं।

कोई भी मनुष्य अपनी वर्त्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट नहीं है। वह सदा एक नयी दुनियाँका स्वप्न देखा करता है, जिसमें वह अपने सुखका अन्त नहीं समझता और वहाँ तक पहुँचनेका प्रयत्न किया करता है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें वह भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वप्न देखा करता है। बाल्यकालमें जब हम खेलकी दृष्टिसे सारे संसारको देखते हैं, हमारे जीवनका आदर्श इक्केवाले या रेलगाड़ी अथवा इंजन चालक तक ही सीमित रहता है। युवावस्थामें हमें बचपनकी बातें हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। अब हमारा आदर्श बदल जाता है। अब हमें इक्के और रेलगाड़ी चलानेमें सुख नहीं जान पड़ता। बल्कि हम धन, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, सुन्दरी स्त्री और तरह-तरहकी अमीरी ठाठोंका स्वप्न देखते हैं। परन्तु किसी प्रकार बड़े परिश्रम और कष्टके पश्चात् इन पदार्थों को पा लेने पर भी हमें शान्ति नहीं मिलती। अब हमें सन्तानकी चिन्ता लग जाती है। सन्तान न होने पर हम सन्तानकी प्राप्तिके लिये नाना-प्रकारके उपाय करते हैं। सन्तान उत्पन्न होनेके बाद उनके पालन-पोषण, शिक्षा और विवाह आदिकी अनेकों चिन्ताएँ आ घिरती हैं और अन्तमें हम अपने जीवनसे भी उबकर ऐसा सोचते हैं कि अब कुछ ही दिनोंकी बात है, लड़के बड़े और समझदार हो जायेंगे, तब गृहस्थीका भार उनके ऊपर सौंपकर हम वृद्धावस्थामें चैनसे दिन काटेंगे। परन्तु वृद्धावस्था अपने साथ नये-नये दुःखोंको साथ लेकर आती है। शरीर ढीला पड़ जाता है। तरह-तरहके रोग पीछा नहीं छोड़ते, कुटुम्ब बढ़ जाता है। नाती-पोते और परपोते हो जाते हैं; कुटुम्बमें शाखाएँ लगनेसे दुःख और चिन्तामें भी शाखाएँ और शाखाओंमें भी उपशाखाएँ लगती जाती हैं। सारांश यह कि सुख में खोज करते-करते मृत्यु तक पहुँच जाते हैं; किन्तु फिर भी सुख नसीब नहीं होता। हम जीवन भर सुखके पीछे-पीछे भागते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई अपनी छायाके पीछे भाग रहा हो; हम जितना ही आगे बढ़कर उसे पकड़ना चाहते हैं, वह उतने ही आगे बढ़ती जाती है। इससे क्या यह प्रतीत नहीं होता कि सांसारिक सुख भी छाया सुख ही हैं?

विचारवान मनुष्य और शास्त्र दोनों ही सांसारिक सुखोंको अनित्य, आपात सुखकर किन्तु परिणाम में दुःखदायी बतलाते हैं। देखनेमें इन्द्रायण फल जैसे ऊपरसे अत्यन्त सुन्दर, पर खानेमें बहुत ही कड़वे होते हैं। अतएव सांसारिक भोग द्वारा सुख प्राप्तिकी आशा बबूलका पेड़ लगाकर उससे आम का फल पानेकी दुराशाके समान है।

कुछ लोग उपरोक्त कथनको ठीक नहीं मानते। उनका कहना है, 'भोगों से सुखकी प्राप्ति निश्चित-रूपमें होती है। परन्तु भोगोंमें जो दुःख देखा जाता है, उसका कारण भोगोंकी अत्यधिक कमी अथवा अतिका होना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि संसारके अधिकांश मनुष्य दुःखी और शोकग्रस्त हैं; परन्तु इसका मूल कारण धन और पुरुषार्थकी कमी होती है जिससे वे अपनी भोग वासनाओंको भली-प्रकार तृप्त नहीं कर पाते। उनकी कोई न कोई कामना अतृप्त रह जाती है; दूसरी तरफ, भोगोंकी आवश्यकतासे अधिक भोगसे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, बुद्धि नष्ट हो जाती है और अन्तमें उन्हें भाँति-भाँतिके दुःख झेलने पड़ते हैं। संसारमें ऐसे लोग भी देखे जाते हैं, जिनको भगवान्‌ने सब कुछ दे रखा है और वे बुद्धि-मानीपूर्वक उचित रूपमें उनका भोग करते हुए बहुत ही सुखी हैं।

उपरोक्त शंका स्वाभाविक है। प्रत्येक मनुष्य ऐसा सोचता है कि यदि उसकी अमुक वासना तृप्त होजाय, तो वह बड़ा सुखी हो सकता है। कोई कहता है, मुझे कहीं से दस लाख रुपये मिल जाँय तो मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए; मेरे दिन बड़े आनन्द से कटें। किसी का विवाह नहीं होता। वह कहता है, मुझसे कोई जितना भी धन ले ले, पर मेरा विवाह किसी सुन्दरी युवतीके साथ करा दे तो मैं समझूँगा कि मुझे स्वर्ग मिल गया। कोई किसी असाध्य रोगसे पीड़ित है।

वह भगवानसे प्रार्थना करता है—'हे भगवन्! तू इस रोगसे मेरा उद्धार कर दे, मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूँगा। बस, यही एक ही मेरी प्रार्थना है; इसे पूरी करदे; मैं तुझसे और कुछ भी नहीं मागूँगा। परन्तु एक वासना पूरी होते ही उसी प्रकारकी और भी कई वासनाएँ हृदयमें जग पड़ती है और धीरे-धीरे बढ़कर इतनी प्रबल हो जाती हैं कि फिर वे मनुष्यको नचाने लगती हैं। मनुष्य किसी तरह विविध प्रकारकी वासनाओंके अधीन होकर भटकता फिरता है। उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। वह जितना ही अपनी भोग-वासनाओंको तृप्त करना चाहता है, उसकी भोग-वासनाएँ उतनी अधिक बढ़ती जाती हैं। साँपको जितना अधिक दूध पिलाया जायगा, वह उतना ही अधिक जहरीला होगा। उसी प्रकार मनुष्य जितना ही अधिक भोग करता है वह उतना ही भोगोंसे अतृप्त होता जाता है। उसकी भोग-वासनाएँ दिन-दिन बढ़ती जाती हैं। आजतक कोई भी मनुष्य ऐसा देखा-सुना नहीं गया, जिसने यह कहा हो कि अपनी सारी भोगवासनाओंको तृप्त कर मैंने शान्ति प्राप्त कर ली है। मृत्युलोककी बात तो दूर ही रही स्वर्ग लोकमें इन्द्र भी—जिनके पास भोग की सारी सामग्रियाँ पूर्ण रूपमें विद्यमान हैं—अपनी भोगवासनाओंको तृप्त न कर सके। भोग-तृष्णाकी एक चिनगारी जीवका सर्वनाश करनेमें समर्थ है, उसे सुलग कर प्रचण्ड दावाग्निके रूपमें परिणत होते देर नहीं लगती। सौभरी मुनिके हृदयमें तपस्या करते-करते एकबार जलमें मछलियोंको क्रीड़ा करते देखकर भोग-वासनाकी छोटीसी चिनगारी लग गयी। फिर क्या था? उनकी सारी योग-शक्ति क्षण-भरमें जल कर खाक हो गयी। वे व्याकुल होकर महाराज मन्धाताके पास पहुँचे और उनसे एक कन्या की प्रार्थना की। महाराज मन्धाताने अपनी पचास कन्याओंका विवाह सौभरी मुनिके साथ कर दिया। सौभरीको मंत्रबल था। उन्होंने अपनी तपस्याके प्रभाव से अत्यन्त सुन्दर रूप धारण कर लिया और अनेकों दास-दासियों, नाना-प्रकारके मनोहर बाग-बगीचे, निर्मल जलके सरोवर, सुगन्धित फूलोंके बाग और पक्षियोंके मधुर कलरवसे सुशोभित राजभवनमें परम-सुन्दरी स्त्रियों के साथ विहार करने लगे। सौभरीका गृहस्थाश्रम देखकर सम्पूर्ण पृथ्वीके चक्रवर्त्ती सम्राट मन्धाता भी आश्चर्य-चकित थे। इस प्रकार विविध प्रकारके बहुमूल्य पदार्थ संग्रह करके सौभरी विषय-भोगोंको भोगनेमें मत्त हो गये। परन्तु जिस प्रकार घीके छींटोंसे अग्नि शान्ति नहीं होती, उसी प्रकार सौभरी भी प्रचुर भोगोंको भोगकर भी आत्म-शान्ति लाभ नहीं कर सके। वे अन्तमें एक दिन विचारने लगे—

एकस्तपस्व्याहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्।
पंचाशदासमुत पंचसहस्रसर्गः॥
नान्तं व्रजम्यूभयकृत्यमनोरथानां।
मायागुणैर्ह्रतमतिर्विषयेऽर्थभावः॥
(श्रीमद्भा०)

अर्थात्, हाय! मैं बड़ा तपस्वी था, जलमें मछलियोंको क्रीड़ा करते देख कर भोगोंमें आसक्त हो गया। फिर विवाह किया; एकसे पचास और एक इक्यावन हुआ और अब प्रत्येक स्त्रीसे सौ-सौ पुत्र पैदा कर पचास हजार इक्यावन हो गया हूँ। माया द्वारा अपनी विवेक-बुद्धिको नष्ट कर विषय भोगमें ही सुख मान बैठा हूँ। परन्तु फिर भी विषयवासना का कहीं भी अन्त नहीं देख पा रहा हूँ।

ऐसा सोचकर सौभरीने अपने हरे-भरे परिवार और दुर्लभ राज्य आदि—सबको त्याग कर वनमें चले गये और भगवद्भजन कर परम शान्तिको प्राप्त हुए।

राजा ययातिने भी शुक्राचार्यके प्रभावसे अपने कनिष्ठ पुत्रका यौवन लेकर एक हजार वर्षोंतक भोगों को भोगनेके पश्चात् पश्चाताप किया था—

पूर्णं वर्ष सहस्रं मे विषयान सेवतोऽसकृत्।
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते॥
(श्रीमद्भा० ६।१६।१८)

अर्थात् विषयोंका बार-बार सेवन करते-करते मेरे पूरे एक हजार वर्ष हो गये, फिर भी क्षण-प्रति-क्षण उन भोगोंकी लालसा बढ़ती ही जारही है ?

भोग जितना ही अधिक किया जाता है, भोग करनेकी स्पृहा उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है; और भोग करनेकी स्पृहा जितनी ही अधिक प्रबल होती है, उसे शान्त करना उतना ही कठिन होता है। इसलिये भोगमें सुख कहाँ ?

इसमें संदेह नहीं कि कोई-कोई मनुष्य अपनेको पूर्ण सन्तुष्ट और सुखी बतलाते हैं और साधारण बातचीतमें जब कोई किसीसे यह पूछता है कि—'आप कुशलपूर्वक हैं तो ?'—तब सभी हँसकर कह देते हैं कि 'आपकी कृपासे सब कुशल है।' या 'सब आनन्द है।' परन्तु वे कितने आनन्द या कुशलसे हैं—यह तो उनका हृदय ही जानता है।

कोई-कोई वास्तवमें अपनेको बड़ा सुखी समझते हैं। वे सोचते हैं कि भगवानने हमें धन, ऐश्वर्य, रूप, गुण और सन्तानादि सब कुछ दिये हैं। हमें अब और किसी बातकी कामना नहीं है। मेरे बराबर संसारमें कौन सुखी है ? ऐसे लोग अल्प बुद्धिवाले और विचार-रहित होते हैं। यदि इनमें थोड़ी भी विवेक-बुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि होती तो इन्हें अपने मनकी यथार्थ स्थितिका पता लगता। मनकी कामनाओं-को समझ लेना कोई सरल काम नहीं है ? भोगासक्त मनुष्यके मनमें बहुत सी वासनाएँ छिपी रहती हैं और जब तक वे प्रबल नहीं हो जातीं, तब तक मनुष्यको उनका पता नहीं चलता। वे गुप्त रूपसे उनके हृदयमें अपना पूर्ण साम्राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न किया करती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे मनुष्य यह भी समझ नहीं पाते कि सुख वास्तवमें है क्या चीज। वे दूसरे लोगोंकी तुलनामें अपने अन्दर कुछ दुःखका अभाव देख कर ही अपनेको सुखी मान बैठते हैं। वे दूसरोंको निर्धन, अस्वस्थ तथा सन्तान-रहित होनेके कारण उनको दुःखी और अपनेको धनी, निरोग तथा सन्तानयुक्त होनेके कारण सुखी समझते हैं। छोटे-छोटे नदी-नालोंमें जिसप्रकार असामयिक अल्प वृष्टिसे भी बाढ़ आ जाती है, उसी प्रकार अल्प बुद्धिवाले विवेकहीन पुरुष भी भोगकी अल्प सामग्री प्राप्त कर अपनेको बड़ा सुखी मानते हैं; परन्तु विचार करनेकी बात तो यह है कि जिन वस्तुओंके अभावसे दूसरे भोगवासनायुक्त मनुष्योंको दुःख होता है, उन्हीं वस्तुओंको प्राप्त करके अपनेको सुखी माननेवालोंको वास्तवमें सुख होता है या नहीं ? यदि थोड़ी देरके लिये यह स्वीकार कर लिया जाय कि मनुष्य भोगकी सारी सामग्री संग्रह करके उनका उचितमात्रामें भोग कर सुखी हो सकता है। अब प्रश्न होता है कि वैसा सुख वास्तविक है या मिथ्या ?

अस्तु, सुख पर कुछ गहरा विचार करना आव-श्यक है। किसी वस्तुमें सुख क्यों होता है ? मांस-भक्षण, धूम्रपान, मद्यपान, वेश्यागमन और द्यूत आदिमें क्यों आनन्द मिलता है ? सुन्दर वस्त्र धारण करनेसे, बहुमूल्य अलंकारोंसे सजनेसे, पतंग उड़ाने और कबूतरबाजीमें क्यों आनन्द आता है ? यदि यह कहा जाय कि ये पदार्थ स्वभावसे ही आनन्ददायक हैं, तो प्रत्येक मनुष्यको इनसे क्यों सुख प्राप्त नहीं होता है ? एक मनुष्य बड़े सुखसे मांस खाता है परन्तु दूसरेको मांस देखते ही कै हो जाती है। एक को बिना सिगरेट पिये चैन नहीं आता, दूसरेको उसके धुएँ से भी घृणा होती है। इस प्रकार एक ही वस्तु एकके लिये सुखदायी और दूसरेके लिये दुःख-दायी होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि सुख किसी वस्तुमें नहीं, बल्कि मनमें होता है। जिसका मन जिस पदार्थके प्रति आसक्त है, उसको उस पदार्थ की प्राप्तिसे सुख होता है तथा उस पदार्थके बिछुड़नेसे दुःख होता है।

एक बालक खिलौनेमें आसक्त है; वह खिलौने के लिये रोता है, भूमि पर लोटता है। पर ज्योंही उसे खिलौना मिल जाता है, वह बड़ा आनन्दित हो जाता है। परन्तु एक बूढ़े मनुष्यको न तो खिलौनेमें

आसक्ति होती है और न उसे पाकर उसे सुख ही होता है। इसलिये सुख-दुःख किसी वस्तुमें नहीं है, बल्कि सुःख-दुःखको उत्पन्न करनेवाले हम लोग ही हैं। स्त्री, पुत्र, धनमें सुख नहीं है; हम स्त्री, पुत्र और धन आदिके प्रति आसक्त होनेके कारण इनके संयोग में सुख और वियोगमें दुःखकी कल्पना करते हैं।

वास्तवमें सांसारिक विषयोंको भोगकर सुख प्राप्त करना अपने भीतर आप ही आग लगा कर बुझानेके समान है। कुत्ता एक सूखी हड्डीको बड़े परिश्रमसे चबाता है और अपने दाँतोंसे निकले हुए खूनको ही हड्डीका खून समझ कर उसे बड़े स्वादसे चाटता और अपनेको सुखी मानता है। इसी प्रकार हम भी अपने मनको विषयोंमें लगा कर उनको भोगते समय अपने ही विषयासक्त मनके कल्पित सुखको विषयोंका सुख समझ कर जोंककी भाँति चिपके रहते हैं। हाय! हम मनुष्य होकर भी पशुओंके समान केवल विषयोंको भोगनेमें ही मत्त हैं?

सांसारिक सुखकी उत्पत्ति आसक्तिसे होती है और आसक्ति बन्धनका कारण है। इसलिये जब हम किसी पदार्थको भोगना चाहते हैं, तो उलटा वह पदार्थ हमें ही भोग करता है। जिस पदार्थसे हम अपनी सेवा कराना चाहते हैं, वही हमारे गले पड़ जाता है। धनका सुख भोग करनेके लिये हमें धन-संग्रहके लिये दूसरोंकी गुलामी करनी पड़ती है और धन प्राप्त होने पर भी उस धनकी रक्षाके लिये चौकीदारी करनी पड़ती है। चोर और डाकुओंसे धनकी रक्षाके लिये कभी-कभी हमें अपनी जान भी देनी पड़ती है। ऐसे भी धनी मनुष्य देखे गये हैं, जो अपने खजाने की कोठरीके तालेसे अपना पैर बाँध कर रातमें सोते हैं। यदि हम एक तोता भी पालते हैं, तो उसके लिये समय पर दाना-पानीका प्रबन्ध करना पड़ता है और कुत्ते-बिल्ली आदि जानवरोंसे उसकी रक्षाके लिये चिन्ता होती है। इस प्रकार जिसके पास जितनी ही अधिक भोगकी सामग्रियाँ होती हैं उसे उतना ही अधिक बन्धन होता है। बन्धनसे अधीनता और अन्तमें दुःख प्राप्त होता है।

यदि थोड़ी देरके लिये यह स्वीकार भी कर लिया जाय कि विषयोंका सुख निरा कल्पित ही नहीं और केवल हमारी भोगसक्तिका ही परिणाम नहीं है, बल्कि वह विषयोंका स्वाभाविक गुण है; फिर भी यह मानना पड़ेगा कि सभी विषय अनित्य होते हैं; वे चलती-फिरती छायाके समान कभी प्रकट होते हैं और कभी छिप जाते हैं। इसलिये सुखकी आशा देकर दारुण दुःखदायी होते हैं। वृद्धवस्थामें यौवन और सौन्दर्य चले जाते हैं। धन और ऐश्वर्य बुरे दिनोंमें नष्ट हो जाते हैं। स्त्री-पुत्र अकालमें ही काल-का ग्रास बन जाते हैं। बाजीगरके लगाये हुए आम जिस प्रकार खानेके लिये नहीं, देखने भर को होते हैं, उसी प्रकार समस्त सांसारिक भोग-पदार्थ अनित्य हैं। इसलिये उनमें भोगबुद्धि रखने तथा उनसे प्रीति करनेसे कदापि सुख नहीं मिल सकता।

राजा चित्रकेतुके एक सहस्र रानियाँ थीं। परन्तु उनमेंसे एकसे भी पुत्र नहीं हुआ। इसलिये वे विराट साम्राज्य और ऐश्वर्यके स्वामी होते हुए भी बड़े दुःखी रहते थे। एक बार महर्षि अङ्गिराके चरणोंमें अपने दुःखका कारण निवेदन कर उनसे पुत्र माँगा। अङ्गिराने एक यज्ञ करा कर चित्रकेतुकी प्रधान महिषी महारानी कृतद्युतिको उसका प्रसाद खिलाया, जिससे उनके गर्भसे एक बहुत ही सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। अब राजा चित्रकेतुके सुखकी सीमा न रही। उन्होंने ब्राह्मणोंको अनेकों हाथी, घोड़े, घर, गाँव, आभूषण तथा साठ करोड़ गौवें दान दी। जिस प्रकार बादल जल बरसाते हैं, उसी प्रकार राजाने कुमारके यश, धन और आयुकी वृद्धिके लिये लोगोंको मुँहमागे पदार्थ दान दिये। बालकका बड़े लाड़चावसे लालन-पालन होने लगा। पुत्रवती रानी कृतद्युतिसे राजा अब जिस प्रकार स्नेह करने लगे, उसे देख कर दूसरी रानियोंके हृदयमें बड़ी ईर्ष्या होने लगी। यह ईर्ष्या धीरे-धीरे अपनी चरम सीमाको पहुँच गयी। उनकी बुद्धि मारी गयी। उन्होंने एक दिन निर्दयता पूर्वक कुमार को विष दे दिया; वह सदाके लिये सो गया।

कुमारके मरनेका संवाद पाकर राजाके हृदय पर वज्राघात हुआ; वे वहाँसे मूर्च्छित होते-गिरते। पहले पागलोंकी भाँति किसी प्रकार अपने मृत पुत्रके पास पहुँचे और उसके पैरोंके पास गिरकर मूर्च्छित हो गये। इधर रानी कृतद्युति अपने दोनों हाथोंसे छाती पीट-पीट कर कुररी पक्षीके समान उच्च स्वरमें विविध प्रकार विलाप करने लगी—

'अरे विधाता! तू सचमुच ही बड़ा मूर्ख है, जो अपनी सृष्टिके प्रतिकूल चेष्टा करता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि बूढ़े-बूढे तो जीते रहें और उनके सामने ही उनके बालक मर जाँय। यदि वास्तवमें तेरे स्वभावमें ऐसी ही विपरीतता है, तब तो तू जीवोंका अमर शत्रु है। यदि संसारमें प्राणियोंके जीवन-मरणका कोई क्रम न रहे तो वे अपने प्रारब्ध के अनुसार जनमते-मरते रहेंगे, फिर तेरी आवश्यकता ही क्या है? तूने सम्बन्धियोंमें स्नेह-बन्धन तो इसीलिये डाल रखा है न, कि वे तेरी सृष्टिको बढ़ायें? परन्तु तू इस प्रकार बच्चोंको मारकर अपने किये कराये पर अपने हाथों पानी फेर रहा है। ऐसा होने पर कौन अपने संतानका लालन-पालन कर तेरी सृष्टि को बढ़ायेगा; फल स्वरूप तेरी सृष्टि अपने आप लुप्त हो जायगी। तू बड़ा ही मूर्ख है।'

'बेटा! मैं तुम्हारे बिना अनाथ और दीन हो रही हूँ। मुझे छोड़कर इस प्रकार चले जाना उचित नहीं है। तनिक आँख खोलकर देखो तो सही, तुम्हारे पिताजी तुम्हारे वियोगमें कितने शोकसंतप्त हो रहे हैं। बेटा! उठो, देखो, तुम्हारे साथी बालक तुम्हें खेलनेके लिये बुला रहे हैं। तुम्हें सोते बहुत देर हो गयी, अब भूख लगी होगी। उठो, कुछ खा लो। तुम उठ कर स्तन पान क्यों नहीं करते? प्यारे लाल! मैं बड़ी अभागिनी हूँ। आज मैं तुम्हारे मुखारविन्द पर वह भोलीभाली मुसकराहट और आनन्दभरी चितवन नहीं देख पा रही हूँ। हाय-हाय! अब भी तुम्हारी सुमधुर तोतली बोली नहीं सुनायी दे रही है। क्या सचमुच निठुर यमराज तुम्हें उस परलोकमें ले गया, जहाँ से फिर कोई लौट कर नहीं आता?

रानीको इसप्रकार विलाप करते देखकर सम्राट चित्रकेतु भी शोक-सन्तप्त हो फूट-फूटकर रोने लगे। राजाको इस प्रकार शोकाकुल जानकर महर्षि अंगिरा देवर्षि नारदके साथ पुनः वहाँ उपस्थित हुए और अनेकों प्रकारसे राजाको समझाते हुए उपदेश करने लगे।

'राजन्! जिसके लिये तुम इतना शोक करते हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्मोंमें तुम्हारा कौन था? उसके तुम कौन थे? और अगले जन्मोंमें भी उसके साथ तुम्हारा क्या संबन्ध रहेगा? जैसे जल के वेगसे बालूके कण एक दूसरेसे जुड़ते और बिछुड़ते रहते है, उसीप्रकार कालके प्रवाहमें प्राणियों का भी मिलन और बिछुड़न होता है। जैसे कुछ बीजों से दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही भगवानकी मायासे प्रेरित होकर प्राणियोंसे अन्य प्राणी उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। जिसे तुम अपना पुत्र कहते हो, वह इस जन्मसे पहले तुम्हारे साथ न था और इस समय तो तुम प्रत्यक्ष देख ही रहे हो कि वह तुम्हारे पास नहीं है। फिर उसके लिये शोक क्यों कर रहे हो? जिस प्रकार एक पक्षी तुम्हारे राजभवन पर आकर कुछ समयके लिये बैठ जाता है और फिर उड़कर चला जाता है; तुम उसके लिये शोक नहीं करते, उसी प्रकार तुम्हें पुत्रके लिये भी शोक नहीं करना चाहिए। स्त्री, गृह, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, शब्दादि विषय-समूह और राजैश्वर्य—सबके सब अनित्य हैं तथा शोक, मोह भय और पीड़ाके कारण हैं। बादलोंकी छायाकी तरह कभी आते और कभी चले जाते हैं। अतः आप शोक परित्याग कर इस दुर्लभ मनुष्य जन्मको भगवद्भजन कर सफल करें।' दोनों की बात सुनकर राजा शोकको त्यागकर भगवद्भजनमें तत्पर हो गये।

विषयोंको प्राप्त करनेमें दुःख होता है; उनके बिछोहमें भी दुःख होता है। परन्तु फिरभी मन्द-मतिवाले मनुष्य उनसे तात्कालिक सुख पानेकी

आशासे परिश्रम करते। हैं वह सुख भी अनित्य तुच्छ और घृणित होता है। क्योंकि जो सुख मनुष्यको मखमली सेजपर सोने, स्त्रीके साथ भोग करनेमें और स्वादिष्ट भोजनमें मिलता है; वही सुख सुकर और कुकुरको भी गंदी नालीमें लोटने, सुकरी और कुकुरीके साथ संभोगमें तथा विष्ठा खानेमें मिलताहै।

विषय-भोगमें आसक्ति होने पर विवेक रूपी सूर्य पर ग्रहण लग जाता है। जीवात्माके आगे अँधकार छा जाता है। उसे अपना भला-बुरा कुछ भी नहीं दीखता। इन्द्रियोंके वशीभूत होकर वह अपना सर्वनाश कर बैठता है, हरिण अपने श्रवणेन्द्रियके अधीन होकर बहेलियेकी बाँसुरीकी मिठी तान सुन कर जाल में फँस कर अपने प्राणोंको गवाँ देता है; नेत्र-इन्द्रिय के वशीभूत होकर पतंग दीपककी लौमें जल मरते हैं; भ्रमर अपनी जिह्वा-इन्द्रियके वशमें होकर कमलके फूलमें बंद होजाता है; मछली घ्राणेन्द्रियके वशमें होकर चारेके साथ काँटेको निगल कर प्राणोंको गँवाती है; हाथी भोगेन्द्रियके (उपस्थेन्द्रियके) वशीभूत होकर हथिनीके साथ भोग करनेको इच्छा

(१) सुख = विषय + आसक्ति,
= विषय + बन्धन,
= विषय + अधीनता,
= दुःख

से शिकारीके बनाये हुए जालमें पकड़ा जाता है। ये सभी एक-एक इन्द्रियके वश होकर ऐसी दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। परन्तु जो मनुष्य इन पाँचों इन्द्रियोंसे घिरा हुआ है,वह कैसे स्थिर रह सकता है ? वह इनके वशीभूत होनेपर कैसे सुख और शान्ति पा सकता है?

इन्द्रायणके फलको हम चाहे जिधरसे भी क्यों न खायें, कड़वा ही लगता है। इसी प्रकार विषय-भोग पर हम चाहे जिस रूपमें विचार क्यों न करें, वे सदा दुःखमय ही प्रतीत होते हैं। सांसारिक सुख और दुःखमें तनिक भी अन्तर नहीं है। एक तो प्रत्यक्ष ही दुःख देता है और दूसरा सुखका लालच देकर दुःख देता है। दोनों ही प्राणघातक हैं। एक सामनेसे तलवारसे गला काटता है, दूसरा भोगकी मदिरा पिलाकर बेहोश करके पीछेसे छुरी भोंकता है। इसलिये हम जिसे सुख कहते हैं, वह भी अन्तमें दुःखदायी ही होता है। विचार करने पर विषय भोग द्वारा प्राप्त सुखका अर्थ भी दुःख ही प्रतीत होता है। यह बात इस लेखमें प्रस्तुत किये गये विचारोंसे समझा जा सकता है।

(२) सुख = आसक्ति + विषय
= आसक्ति + अनित्य विषय
= आसक्ति + विषमाभाव
= दुःख

मार खाकर प्रेम-दान

स्वयं-भगवान श्रीचैतन्यमहाप्रभुको कुछ अंतरंग भक्तोंको छोड़कर साधारण लोग अबतक पण्डित निमाइके रूपमें ही जानते-मानते थे। अब श्रीमन्महाप्रभुने अपना अभीष्ट कार्य आरम्भ किया। उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभु और हरिदासजीके ऊपर भगवन्नाम-प्रचारका भार सौंप दिया। घर-घर जाकर प्रत्येक व्यक्तिसे हरिनामकी भिक्षा माँगनी थी उन्हें। 'बोलो कृष्ण, भजो कृष्ण, करो कृष्ण शिक्षा'—महाप्रभुजीने इसके अतिरिक्त और कुछ भी माँगनेके लिये उन्हें मना कर दिया था।

उन दिनों सारा नवद्वीप जगाई-मधाई नामक दो महापातकियोंके आंतकसे काँपता था। वे शराब पीकर नशेमें सदा चूर रहते, सर्वत्र लूट-मार मचाते, अकारण ही लोगोंको मारते-पीटते, बेइज्जत करते—इसके अतिरिक्त उनके जीवनमें और कुछ था ही नहीं।

श्रीनित्यानन्द प्रभु और हरिदासजी घर-घर भिक्षा

माँगने लगे—'बोलो कृष्ण, भजो कृष्ण, करो कृष्ण शिक्षा।' लोग चावल-दाल लाते इनको देनेके लिये, परन्तु उसे अस्वीकार कर ये अद्भुत भिक्षुद्वय पुनः अपनी भिक्षाकी टेर सुनाते—

'प्रभु आज्ञा भाई! मूई माँगूँ यह भिक्षा।
बोलो कृष्ण, भजो कृष्ण करो कृष्ण शिक्षा॥'

इन परिचित-नवीन अद्भुत भिक्षुकोंकी कोई खिल्ली उड़ाते, कोई ताना मारते और कोई कोई प्रेम से उनकी अभिष्ट भिक्षाकी स्वीकृति भी भर देते।

'ये कौन हैं?' महापातकी जगाई-मधाईको शराब के नशेमें चूर देख कर परमदयालु पतित-पावन नित्यानन्दप्रभुका कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने मन-ही-मन स्थिर किया—श्रीमन्महाप्रभुकी दया तो इन पर होनी ही चाहिए। इनसे बढ़ कर हरिनाम-दानका उपयुक्त पात्र कहाँ मिलेगा?

लोगोंने दोनों भिक्षुकोंको उन दुष्टोंके समीप जानेसे मना किया। पर मानता कौन? 'भैया! बोलो कृष्ण, भजो कृष्ण, करो कृष्ण शिक्षा।' भिक्षुकोंने महाप्रभुका संदेश सुना ही दिया, कुछ समीप जाकर।

'कौन है रे? खड़ा रह!' दोनों महापातकियोंकी आँखे लाल हो गयीं। वे क्रोधसे तमतमा उठे और झपटे भिक्षुकों की ओर। मधाईने पास ही पड़े एक फूटे घड़ेका टूकड़ा उठा कर दे मारा, श्रीनित्यानन्द प्रभुने मस्तक पर। फिर तो मस्तकसे जो रक्तकी धारा फूट निकली उससे श्रीपादका सारा शरीर लहू-लोहान हो गया। हरिदासजी तो ऐसा भागे कि श्रीमहाप्रभु जीकी चरण छायामें ही जाकर रुके।

'श्रीनित्यानन्दजीके सिरसे रक्तकी धारा बह रही है। जगाई-मधाई उन्हें मार रहे हैं।' सुन कर महाप्रभुका मुख-मण्डल लाल हो गया। 'ऐं! श्रीपाद पर आघात!' वे घटनास्थलको दौड़े, सारी भक्त-मण्डली पीछे-पीछे दौड़ी आ रही थी।

महाप्रभुके नेत्र अरुण हो रहे थे। उन्होंने नित्यानन्द प्रभुको लहू-लुहान अवस्थामें तथा निकट ही महापातकी जगाई-मधाईको भयंकर अवस्थामें देखकर जोरोंसे हुङ्कार किया—'चक्र! चक्र!'

महाप्रभुका आवेश और भयंकर चक्र-तेजका दर्शन कर जगाई-मधाई हतबुद्धसे खड़े रह गये। भय से उनका शरीर काँपने लगा।

'प्रभो! आपका यह प्रेमावतार असुरोंके विनाश के लिये नहीं—असुरोंकी आसुरिकताका विनाश कर उन्हें प्रेम देनेके लिये है। आप इन्हें क्षमा कर अपने अभय चरणोंमें स्थान दीजिये। फिर इस जगाईने तो मेरी रक्षाकी है।'—नित्यानन्द प्रभुकी आँखोंमें आँसू भर आये थे।

'क्या जगाईने आपकी रक्षा की है?' महाप्रभुजी ने जगाईको अपना प्रेमालिंगन प्रदान किया। उनका क्रोध कुछ शान्त हो चला था—नित्यानन्द प्रभुकी प्रार्थनासे। फिर तो जगाई हा कृष्ण! हा कृष्ण कह कर फूट-फूट कर रोता हुआ श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंसे लिपट गया।

प्रेमावतार स्वयं भगवानके दर्शनोंसे दोनोंकी चिर-संचित पाप-राशि ध्वंस हो चुकी थी। उनका हृदय निर्मल हो चुका था। मधाई भी करुणावरुणालय श्रीनित्यानन्द प्रभुके कोटिचन्द्रसुशीतल चरणों में पड़-पड़ा अपनी करनीके लिये रोने लगा। नित्यानन्द प्रभुने उसे उठा कर अभय दान देकर श्रीमन्महाप्रभुके चरणोंमें डाल दिया—'दीनानाथ! यह मधाई ही क्यों आपकी कृपासे वंचित रहे? यही तो आपकी दयाका सर्व-श्रेष्ठ पात्र है। इसे भी क्षमा कर अपनाया जाय।'

इस बार महाप्रभुजी श्रीपाद नित्यानन्द प्रभुजीकी ओर देख कर मुसकरा दिये। जगाई-मधाई 'हा कृष्ण! हा कृष्ण' कह कर अपने अश्रु-जलसे उनके जगत-पावन चरणोंको पखारने लगे। सारी भक्त-मण्डली दोनोंके सौभाग्यको देख कर आवाक् थी। महापातकी भी परम पवित्र बन गये थे।

बोलो श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द प्रभुकी जय।

———

प्रचार-प्रसंग

जगद्गुरु श्रीश्रीप्रभुपादका विरहोत्सव

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें—

विगत २१ मार्गशीर्ष, ७ दिसम्बर, बुधवारको भारतमें सर्वत्र श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता जगद्गुरु नित्यलीला प्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीका चतुर्विंश वार्षिक विरहोत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त शाखामठोंमें खूब धूमधामके साथ सम्पन्न हुआ है। श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूचूड़ा (बंगाल) में उस दिन शामको समितिके आचार्य ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके सभापतित्वमें एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त मुनि महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त परमार्थी महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज और अन्तमें श्रीआचार्यदेवने श्रील प्रभुपादकी अतिमर्त्य जीवनी और शिक्षाओंके सम्बन्धमें सारगर्भित भाषण दिये। उस दिन निमंत्रित-अनिमन्त्रित सैकड़ों व्यक्तिओं-को विभिन्न प्रकारका सुस्वादु प्रसाद वितरण किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें—

यहाँ पर भी उक्त दिवस सवेरे मङ्गलारति और कीर्तनके पश्चात् श्रील प्रभुपाद सम्बन्धी स्तव-स्तोत्र एवं पदावलियोंका कीर्तन हुआ। तदनन्तर परि-व्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी भक्तिकुशल नारसिंह महाराजने श्रील प्रभुपादकी जीवनी और शिक्षाओंके सम्बन्धमें गद्गद् कंठ और गलदाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे एक संक्षिप्त भाषण दिया। शामको उन्हींके सभापतित्वमें एक विरह सभा हुई जिसमें श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी, श्रीहरिदास ब्रजवासी, श्रीकुञ्जविहारी ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रील प्रभुपादकी जीवनी, शिक्षा और उनके प्रचार वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें भाषण दिये।

श्रीश्रीआचार्यदेवका प्रचार अभियान

(क) हुगली जिलेमें—

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके नियामक और आचार्य ॐविष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज गत २८ और २९ नवम्बरको श्रीधामवृन्दावनके श्री-चैतन्य गौड़ीय मठके नव-मन्दिर और विग्रह-प्रतिष्ठा-के उपलक्ष्यमें अयोजित धर्मसभामें 'धर्मकी आव-श्यकता' और श्रीविग्रह तत्त्व एवं पूजाके सम्बन्धमें दो प्रभावशाली सारगर्भित भाषण—जिसने सारे ब्रजमण्डलमें धूम मचा दिया है—प्रदान कर ३० नवम्बरको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरासे शुभ यात्रा कर ३१ नवम्बरको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चूचूड़ा (बंगाल) में पधारे। तत्पश्चात् १५ दिसम्बर-से १९ दिसम्बर तक तीन दिन तक राजबोलहाट और निकटवर्ती स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार किये हैं।

(ख) खागड़ा और जियागंजमें (मुर्शिदाबाद जिलेमें)—

राजबोलहाटसे लौट कर वे पुनः बहरमपुर, खागड़ा और जियागंजके विशिष्ट नागरिकोंके आह्वान पर वहाँ पधार कर खागड़ाकी तीन और जियागंजकी दो धर्म-सभाओंमें 'वैष्णव धर्मकी मौलिकता', 'अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्व' और 'श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा' आदि विषयों पर सारगर्भित और पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिये, जिनका वहाँकी जनताने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्-भक्ति वेदान्त मुनि महाराज, श्रीवास दासाधिकारी, श्रीभागवत दासाधिकारी, श्रीचिद् घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीरामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीकनाई ब्रह्मचारी, श्री-गोविन्द ब्रह्मचारी, श्रीमाधवदास ब्रह्मचारी, श्रीवंशी-वदनानन्द ब्रह्मचारी एवं श्रीसुभाष ब्रह्मचारी आदि संन्यासी एवं ब्रह्मचारी उनके साथ थे। श्रीपाद त्रिविक्रम महाराजने खागड़ामें ३ दिन तथा जिया-गंजमें २ दिन छायाचित्रके सहारे श्रीगौरलीला और श्रीकृष्णलीलाके विषयमें विविध प्रकारकी सत् शिक्षाओंसे युक्त पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिये। इस प्रकार उक्त स्थानोंमें श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्ध भक्तिका प्रचार कर श्रीवास दासाधिकारीको प्रचार पार्टीको वहीं छोड़ कर श्री-आचार्यदेव अन्यान्य संन्यासी और ब्रह्मचारियोंके साथ विगत १ जनवरीको श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें पधारे। श्रीवास दासाधिकारी पार्टीके साथ उसी अञ्चलमें प्रचार कर रहे हैं।

(ग) मेदिनीपुरके गावोंमें—

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,नवद्वीपसे श्रीआचार्यदेव ३ जनवरीको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चूचूड़ामें पधारे। पुनः मेदिनीपुर जिलेके कल्याणपुर, पूर्वचक और सातशामाल आदि स्थानोंके नागरिकोंकी विशेष प्रार्थना पर कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ वहाँ पधारे हैं और उन स्थानोंमें आयोजित् विराट-विराट धर्म-सभाओंमें भाषण और प्रवचन आदि द्वारा शुद्ध भक्ति-धर्मका प्रचार कर रहे हैं। विस्तृत सम्वाद अगली संख्यामें प्रकाशित होगा।

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराजका तूफानी प्रचार-दौरा—

समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजी, त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, श्रीभागवत दासाधिकारी, श्रीगोविन्द ब्रह्मचारी और श्रीसुभाष ब्रह्मचारीको साथ लेकर आसनसोल और वर्नपुर आदि स्थानोंनेमें शुद्ध भक्तिका प्रचार कर मुर्शिदाबाद जिलेके खगड़ा और जियागंजमें श्रील आचार्यदेवके श्रीचरणकमलोंका दर्शन किये और उनके साथ सम्मिलित होकर वहाँ छाया चित्रके सहारे कई दिनोंतक श्रीकृष्णलीला और श्रीगौरलीला का प्रदर्शन कर प्रभावोत्पादक भाषण दिये। तत्पश्चात् पार्टी सहित श्रीआचार्यदेवके साथ श्रीधाम नवद्वीप होकर चूचूड़ा लौटे। आजकल वे वर्द्धमान जिलेके विभिन्न गाँवों प्रचार कर रहे हैं।

सुन्दरवनमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचारक

समितिके प्रचारक श्रीभगवानदास ब्रह्मचारी—श्रीरंगनाथ ब्रह्मचारी श्रीउपानन्द दासाधिकारी और रमानाथ दासाधिकारी आदिके साथ १८ जनवरीसे सुन्दर वनके विभिन्न गाँवोंमें भ्रमण कर श्रीमहाप्रभुके प्रेम-धर्मका प्रचार कर रहे हैं।

केशवपुर और सातशामाल (मेदिनीपुर) अञ्चलमें

समितिके प्रचारक श्रीहरिचरण ब्रह्मचारी कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ आजकल मेदिनीपुर जिलेके

केशवपुर और सातशामाल आदि विभिन्न गाँवोंमें प्रचार कर रहे हैं ।

मथुरामें श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादकका भाषण

गत २६ दिसम्बरको सदरबाजार मथुराके नागरिकोंके उद्योगसे वहाँ पर स्वामी रामानन्द ब्रह्मचारी का वार्षिक विरहोत्सव खूब धूम-धामके साथ सम्पन्न हुआ है । उसके उपलक्ष्यमें एक सभाका आयोजन हुआ था, जिसमें संकीर्त्तनके पश्चात् श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदान्त नारायण महाराजने श्रीगुरुतत्त्व और युग-धर्म हरिनाम संकीर्तनके सम्बन्धमें पण्डित्यपूर्ण भाषण दिये । श्रीहरिदास ब्रजवासीने भी गुरु-तत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिये । भाषणके पश्चात् सबको महाप्रसाद वितरण किया गया ।

श्रीधाम वृन्दावनमें नवमन्दिर और श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा—

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके उद्योगसे श्रीधाम वृन्दावन में तदीय शाखा मठके नवमन्दिर और श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधा-गोविन्दजी—श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठाके उप-लक्ष्यमें गत मार्गशीर्ष शुक्ला १२, २८ नवम्बर, सोमवारसे पौष कृष्ण १, ४ दिसम्बर, रविवार तक सप्ताह व्यापी अनुष्ठान बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ है । २८ नवम्बरको श्रीमन्दिरके चूड़ेके ऊपर चक्र और ध्वजाकी प्रतिष्ठा हुई । ३० नवम्बरको पंचरात्र और श्रीभागवतके विधानोंके अनुसार महाभिषेक, यज्ञ, प्रस्थानत्रय पारायण तथा नामसंकीर्तनपूर्वक श्रीश्रीगुरुगौरांग-राधा-गोविन्दजीके—विग्रहोंकी तथा तथा उनके नव-मन्दिरकी प्रतिष्ठा बड़े धूम-धामसे सम्पन्न हुई है।

उपरोक्त महदनुष्ठानकी प्रधान विशेषता थी—वहाँ पर आयोजित लगातार सात दिनोंमें सात धर्म-सभाएँ, जिनमें धर्मकी आवश्यकता, श्रीविग्रह-तत्त्व एवं पूजा, श्रीचैतन्यदेव और कृष्ण, वैष्णव-दर्शन, नीति और प्रीति, प्रेमभक्ति और नाम-संकीर्त्तन—इन सात विषयों पर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानों एवं सन्तोंके भाषण हुए हैं । श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके नियामक और संस्थापक आचार्य ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज,श्रीगौड़ीय सङ्घाध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज, श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठाध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरिमहाराज, श्रीभागवत मठाध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज,श्रीगौर सारस्वत मठाध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज, श्रीचैतन्य गौड़ीय मठाध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति दयित माधव महाराज आदि प्रधान वक्ताओंके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं । सात धर्म-सभाओंका सभापतित्व मथुराके साहित्यकार श्रीप्रभुदयालुजी मीतल, श्री बी० के० मिश्रा, आई० ए० एस० जिलाधीश मथुरा; श्रीगौड़ीयसंघाध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति सारंग गोस्वामी महाराज, श्री आर० बी० अग्रवाल अ० सेसन्स जज मथुरा, श्रीशम्भुनाथ चतुर्वेदी, मेयर आगरा कारपोरेशन; लै० कर्नल श्री के० पी० भटनागर उप कुलपति आगरा विश्वविद्यालय आदि महोदयोंने किया । अन्तिम दिन केन्द्रिय निर्माण एवं आयात मन्त्री श्री के० सी० रेड्डी महोदय प्रधान अतिथिके रूपमें पधारे थे ।

जैव-धर्म

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ६, संख्या १-६, पृष्ठ १३६ से आगे]

विजय—वयसका विषय अवगत हुआ; अब रूप के सम्बन्धमें बतलाइये।

गोस्वामी—आभूषणोंसे रहित होने पर भी भूषितकी भाँति सुन्दर दिखलायी पड़े—उसे रूप कहते हैं। सुन्दर रूपमें अंगोंके न्यस्त होने पर ही सुन्दर रूप होता है।

विजय—लावण्य किसे कहते हैं?

गोस्वामी—जिस प्रकार मुक्ताके भीतरसे एक छटा निकलती है, उसी प्रकार अङ्गोंसे जो छटा बाहर होती है, उसे लावण्य कहते है।

विजय—सौन्दर्य किसे कहते हैं?

गोस्वामी—अङ्ग प्रत्यंगोंका यथोचित रूपमें सन्निवेश हो और उनकी संधियोंके स्थान सुन्दर हों—ऐसा होनेसे सौन्दर्य होता है।

विजय—अभिरूपता किसे कहते हैं?

गोस्वामी—अपने आश्चर्य गुणोंके द्वारा अपने निकट स्थित दूसरी वस्तुओंको भी अपना सारूप्य (अपने समान रूप) प्राप्त करानेका नाम—अभिरूपता है।

विजय—माधुर्य किसे कहते हैं?

गोस्वामी—शरीरके किसी अनिवर्चनीय रूपको माधुर्य कहते हैं।

विजय—मार्दव किसे कहते हैं?

गोस्वामी—कोमल चीजोंका स्पर्श भी सहा नहीं जाना मार्दव कहलाता है। मार्दव तीन प्रकारका होता है—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ।

विजय—प्रभो! गुणोंको समझ गया, अब नाम के सम्बन्धमें बतलाइये।

गोस्वामी—रसभावगर्भ अर्थात् परम रहस्यमय गूढ़ रसोंसे पूर्ण राधा-कृष्ण आदि नाम ही नाम हैं।

विजय—अब चरितके सम्बन्धमें बतलाइये।

गोस्वामी—चरित दो प्रकारके होते हैं—अनुभाव और लीला। विभाव समाप्त होने पर अनुभावके सम्बन्धमें बतलाऊँगा।

विजय—तब इस समय लीलाके सम्बन्धमें ही बतलाइये।

गोस्वामी—सुन्दर क्रीड़ा, नृत्य, वेणु-वादन, गोदोहन, पर्वतके ऊपरसे गायोंको बुलाना एवं उनकी गणना करना—इसे लीला कहते हैं।

विजय—सुन्दर क्रीड़ा किसे कहते हैं?

गोस्वामी—रास लीला, गेंद खेलना, पशु-पक्षियों की बोली बोलना आदि अनन्त क्रीड़ाएँ हैं।

विजय—मण्डन कितने प्रकारके हैं?

गोस्वामी—वस्त्र, आभूषण, माला और अनुलेपन—ये चार प्रकारके मण्डन हैं।

विजय—सम्बन्धी किसे कहते हैं?

गोस्वामी—लग्न अर्थात संयुक्त और सन्निहित भेदसे सम्बन्धि-द्रव्य दो प्रकारके होते हैं।

विजय—लग्न किसे कहते हैं?

गोस्वामी—वंशी-रव, शृङ्ग-ध्वनि, गीत, सौरभ, भूषणोंके झंकार, चरण-चिह्न, वीणा-स्वर, शिल्प, कारु-कार्य आदि 'लग्न सम्बन्धी' कहलाते हैं।

विजय—वंशी-रव कैसा होता है?

गोस्वामी—कृष्णके होठोंसे जो मुरली-नादामृत निकलता है, वह समस्त प्रकारके उद्दीपनोंमें प्रधान होता है।

विजय—अब कृपा कर सन्निहित-सम्बन्धीका वर्णन कीजिए।

गोस्वामी—निर्माल्य, मयूर-पुच्छ, पर्वतसे उत्पन्न गैरिक आदि धातुएँ, गौवें, लकुटी, वेणु, शृङ्गी,

कृष्णके प्रिय व्यक्तियोंके दर्शन, गोधूलि, वृन्दावन, वृन्दावनाश्रित वस्तुओं, गोवर्द्धन, यमुना और रास-स्थली आदिको 'सन्निहित सम्बन्धी कहते हैं।

विजय--वृन्दावनाश्रितसे क्या तात्पर्य है ?

गोस्वामी—मृग आदि पशु, मयूर आदि पक्षी, भ्रमर, कुंज लता, तुलसी, पुष्प, कदम्ब आदि—ये वृन्दावनाश्रित हैं।

विजय—'तटस्था' किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—चन्द्रिका अर्थात् ज्योत्स्ना, मेघ विद्युत, वसन्त, शरत्, पूर्णचन्द्र वायु और मयूर आदि पंक्षी—ये सब तटस्थ हैं।

उद्दीपन भावोंको भलीभाँति सुनकर विजय कुमार क्षणभर तक चुप रहे। आलम्बनके साथ उद्दीपन भावोंके एक साथ मिलनेसे उनके हृदयमें एक परम भावका उदय हुआ। साथ ही उनके शरीरमें अनुभाव भी प्रकाशित होने लगें। वे गद्‌गद् स्वरसे बोले—प्रभो ! अब कृपा कर अनुभावोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। आपने कृष्णचरित्रकी एक आंशिक लीलाका विषय बतलाया है। अनुभाव जान लेने पर कृष्ण-चरितको सम्पूर्ण रूपसे जान सकूँगा।

गोस्वामी—अनुभाव तीन प्रकारके हैं—अलङ्कार, उद्भास्वर और वाचिक।

विजय—अलङ्कार किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—व्रजललनाओंके यौवनकालमें बीस प्रकारके अलङ्कार सत्त्वज कहे गये हैं। कान्तके प्रति अत्यधिक अभिनिवेशजन्य ये अत्यद्‌भुत रूपसे उदित होते हैं। इन २० प्रकारके अलङ्कारोंको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है—

(१) अंगज, (२) अयत्नज और (३) स्वभावज।

अंगज—(१) भाव, (२) हाव, (३) हेला।

अयत्नज—(४) शोभा, (५) कान्ति, (६) दीप्ति, (७) माधुर्य, (८) प्रगल्भता, (९) औदार्य, (१०) धैर्य।

स्वभावज—(११) लीला, (१२) विलास, (१३) विच्छित्ति, (१४) विभ्रम, (१५) किलकिंचित, (१६) मोट्टायित, (१७) कुट्टमित, (१८) विब्बोक, (१९) ललित, (२०) विकृत।

विजय—यहाँ भाव का तात्पर्य क्या है ?

गोस्वामी—उज्ज्वल रसमें निर्विकार चित्तके ऊपर रति नामक बीजस्थानीय भावके उदय होने पर ही जो सबसे पहला विकार होता है, उसे 'भाव' कहते हैं। चित्तकी अविकृत-अवस्थाका नाम सत्त्व है। विकृतिका कारण उपस्थित होने पर बीजके आदि विकारकी तरह जो आदि विकार होता है, उसे 'भाव' कहते हैं।

विजय—हाव किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—गर्दनको टेढ़ी कर भ्रू और नेत्र आदि विकासके साथ भावसे अधिकतर प्रकाशशील अवस्थाको 'हाव' कहते हैं।

विजय—हेला किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जिस समय हाव स्पष्ट रूपसे शृंगार सूचक होता है, तब उसे 'हेला' कहते हैं।

विजय—शोभा किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—रूप, संभोग और तारुण्य आदि द्वारा अंगोंका विभूषण ही 'शोभा' है।

विजय—कान्ति किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—मन्मन्थतर्पण द्वारा (कामतृप्ति विधान में) जो उज्ज्वल शोभा होती है, वही 'कान्ति' है।

विजय—दीप्ति किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—वयस, भोग, देश, काल, गुण, रूप और वेश आदि द्वारा उद्दीप्त होकर जिस समय कान्ति विस्तृत होती है, तब उसे 'दीप्ति' कहते हैं।

विजय—माधुर्य किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—चेष्टा-समूहकी सभी अवस्थाओंमें जो चारुता होती है, वही यहाँ पर माधुर्य है।

विजय—प्रगल्भता किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—प्रयोगके समय निडरताको प्रगल्भता कहते हैं। कान्तके अंगोंके ऊपर अपने अंगोंका रखना ही यहाँ 'प्रयोग' का तात्पर्य है।

विजय—औदार्य किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—सर्वावस्थागत विनयको 'औदार्य' कहते हैं।

विजय—धैर्य कैसा होता है ?

गोस्वामी—चित्तवृतिका स्थिर भाव ही—धैर्य है।

विजय—यहाँ लीला किसे कहा गया है ?

गोस्वामी—परम रमणीय वेश और क्रिया आदि द्वारा प्रियतमका अनुकरण करना ही 'लीला' है।

विजय—विलास किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—गमन, स्थिति आसन, मुख और नेत्र आदिका प्रियतमके साथ संगमके लिये जो तात्कालिक वैशिष्ट्य होता है वही 'विलास' है।

विजय—विच्छित्ति किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—अल्पवेश रचनासे ही यदि कान्तिकी पोषकता होती है, तो उस वेश-रचनाको विच्छित्ति कहते हैं। किसी-किसी रसज्ञके मतानुसार अपराधी कान्तके आगमन करने पर जब नायिकाके मनमें ऐसा भाव उठे कि वह अपनी सखियोंके प्रयत्नसे ही भूषण धारण कर रखी है (भाव यह कि उसे आभूषण भार स्वरूप लगते हैं)—इस प्रकार ईर्ष्या-अवज्ञावती स्त्रीके भावको भी विच्छित्ति कहते हैं।

विजय—विभ्रम किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—अपने प्रियतमके साथ मिलनके समय प्रबल मदनवेगके कारण हार और माला आदि भूषणोंको जहाँ धारण करना चाहिए वहाँ धारण न कर दूसरे स्थानपर धारण करनेको 'विभ्रम' कहते हैं।

विजय—किलकिंचित किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—हर्ष हेतु गर्व, अभिलाष, रोदन, हास्य, असूया, भय और क्रोध—इन सबके अकारण ही एक साथ सम्मिश्रणका नाम ही 'किलकिंचित' है।

विजय—मोट्टायित किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—कान्तके स्मरण और उनकी वार्त्ता (समाचार) पानेके समय नायिकाके हृदयमें जो भाव होता है, उस भावसे जो अभिलाषा उत्पन्न होती है—उसे 'मोट्टायित' कहते हैं।

विजय—कुट्टमित किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—स्तन या अधर आदि ग्रहणके समय नायिकाके हृदयमें प्रीति (आनन्द) होने पर भी सभ्रम (गौरव, लज्जा आदि) के कारण बाहरमें क्रोधकी भाँति जो भाव उदित होता है, उसे 'कुट्टमित' कहते हैं।

विजय—विब्बोक किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—गर्व और मानके कारण अपनी प्रिय वस्तु अर्थात् कान्तके प्रति जो अनादर होता है, उसे विब्बोक कहते हैं।

विजय—ललित किसे कहते हैं।

गोस्वामी—अंग-प्रत्यंगोंकी विन्यास भंगी और भ्रूविलासकी मनोहारितासे जो सौकुमार्य प्रकाश पाता है, उसे 'ललित' कहते हैं।

विजय—विकृत किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—लज्जा, मान और ईर्ष्या आदि द्वारा उदित अपने मनके भावोंको वाणी द्वारा व्यक्त न कर चेष्टा द्वारा प्रकट करनेका नाम 'विकृत' है। ये बीस प्रकारके आंगिक और चित्तज अलंकार हैं। इनके अतिरिक्त रसज्ञजन मौग्ध्य और चकित नामक दो और भी अलंकार स्वीकार करते हैं।

विजय—मौग्ध्य किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—प्रियतमके निकट ज्ञात विषयके सम्बन्धमें भी अनजानकी तरह जिज्ञासा करना ही 'मौग्ध्य' अलंकार है !

विजय—अब 'चकित' बतलाइये।

गोस्वामी—भयका कारण न रहने पर भी प्रियतमके निकट महाभय प्रकट करनेका नाम 'चकित' है।

विजय—प्रभो ! अलंकार समझ गया; अब उद्भास्वरके सम्बन्धमें उपदेश करें।

गोस्वामी—हृदयके भाव शरीरमें उद्भासित (प्रकटित) होने पर उसे 'उद्भास्वर' कहते हैं। मधुर रसमें नीवि (कटिबन्ध), उत्तरीय वसन, धम्मिल अर्थात् केश-बन्धन आदिका स्खलित होना या खसक जाना, शरीरका टूटना, जंभाई आना, नासिकाका प्रफुल्लित होना, निःश्वास छोड़ना, लोटना-पलोटन

गीत, आक्रोशन (अपनेको कोसना), आदि—ये सब उद्भास्वर हैं।

विजय—आपने अभी जिनको उद्भास्वर कहा है, उन सबको मोट्टायित और विलासके अन्तर्गत माननेसे भी तो चल सकता था ?

गोस्वामी—तथापि इनके द्वारा किसी विशेष शोभाकी पोषकता होती है। इसीलिये पृथक् रूपमें ही इनका वर्णन किया गया है।

विजय—प्रभो ! अब वाचिक अनुभावोंकी व्याख्या करनेकी कृपा करें।

गोस्वामी—वाचिक अनुभाव बारह प्रकारके हैं—आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, संदेश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश, निर्देश और व्यपदेश।

विजय—आलाप किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—चाटुप्रिय उक्तिका नाम 'आलाप' है।

विजय—विलाप किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—दुःखजनित वाक् प्रयोगका नाम 'विलाप' है।

विजय—संलाप किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—उक्ति और प्रत्युक्तियुक्त वार्त्तालापको 'संलाप' कहते हैं।

विजय—प्रलाप किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—व्यर्थ आलापको 'प्रलाप' कहते हैं।

विजय—अनुलाप किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—बार-बार एक ही बातका आलाप करना ही 'अनुलाप' है।

विजय—अपलाप किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—पूर्वोक्त वाक्यका अर्थ अन्य प्रकारसे करनेका नाम 'अपलाप' है।

विजय—संदेश किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—प्रोषितकान्त (विदेशमें गये हुए कान्त) के पास अपनी खबर भेजना ही 'सन्देश' है।

विजय—अतिदेश किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—उसकी उक्ति ही मेरी उक्ति है, इस प्रकारके वाक्य ही 'अतिदेश' हैं।

विजय—अपदेश किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—अपने वक्तव्य विषयको दूसरे वाक्यों द्वारा व्यक्त करनेका नाम 'अपदेश' है।

विजय—उपदेश किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—शिक्षापूर्ण वाक्योंको 'उपदेश' कहते हैं।

विजय—निर्देश किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—'मैं वही व्यक्ति हूँ'—ऐसी बातको निर्देश कहते हैं।

विजय—व्यपदेश किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—छल द्वारा अपनी अभिलाषा प्रकट करनेका नाम व्यपदेश है। ये सारे अनुभव सभी रसोंमें हैं। परन्तु उज्ज्वल रस अधिक माधुर्यपोषक होनेके कारण इसमें भी इनका वर्णन किया।

विजय—प्रभो ! रस-विषयमें अनुभावको पृथक रूपमें वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता है ?

गोस्वामी—आलम्बन और उद्दीपनके संयोगसे हृदयमें जो भाव उदित होते हैं, वे अङ्गों पर प्रकटित होने पर 'अनुभाव' कहलाते हैं। इनको पृथक रूपमें न बतलानेसे विषय स्पष्ट नहीं हो पाता।

विजय—मधुररसमें सात्त्विक भावकी व्याख्या करनेकी कृपा करें।

गोस्वामी—स्तंभ, स्वेद आदि अष्ट सात्त्विक भाव ही जिनको मैंने पहले साधारण रस-तत्त्वके विचारमें बतलाया है—इस रसके सात्त्विक भाव हैं। इस रसमें उन भावोंके उदाहरण अलग-अलग रूपसे हैं।

विजय—कैसे ?

गोस्वामी—व्रजलीलामें इस प्रकार देखोगे—हर्ष, भय, आश्चर्य, विषाद, अमर्ष—इनसे स्तंभ-भावका उदय होता है। हर्ष, भय, क्रोधसे स्वेद अर्थात् घर्म (पसीना) का उदय होता है। आश्चर्य, हर्ष, भय—इनसे रोमांच होता है। विषाद, विस्मय, अमर्ष

और भयसे स्वर भंग होता है। भय, हर्ष और अमर्षसे वेपथु (कम्प) होता है। विषाद, क्रोध और भयसे वैवर्ण्य (रङ्ग-बदलना) होता है। हर्ष, रोष और विषादसे अश्रु होता है। सुख और दुःखसे प्रलय होता है।

विजय—सात्त्विक विकारोंके कुछ जाति भेद इस रसमें हैं या नहीं ?

गोस्वामी—हाँ, हैं। मैंने साधारण रस-विचारमें सात्त्विक भावोंको धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त बतलाया है। इस रसमें सुदीप्त भाव उद्दीप्तका ही एक प्रकारका भेद है।

विजय—प्रभो, मेरे ऊपर आपकी असीम अनुकम्पा है। अब आप कृपा कर यह बतलाइये कि इस रसमें व्यभिचारी भावोंकी स्थिति किस प्रकार है ?

गोस्वामी—निर्वेद आदि जिन तैंतीस संचारी या व्यभिचारी भावोंको मैंने तुमको पहले बतला चुका हूँ, वे सभी इस रसमें हैं। उग्रता और आलस्य—ये दो इस रसमें नहीं होते। मधुर रसके संचारी भावमें कतिपय विचित्र बातें हैं।

विजय—वे विचित्र बातें क्या हैं ?

गोस्वामी—पहली विचित्र बात यह है कि सख्य आदि रसोंमें सखा और गुरुजनोंका जो कृष्णप्रेम होता है, वह भी इस मधुर रसमें संचारी भाव प्राप्त होता है अर्थात् उन रसोंमें जो स्थायी भाव होते हैं, वे ही इस रसमें संचारी या व्यभिचारी भावमें कार्य करते हैं।

विजय—दूसरी आश्चर्यकी बात क्या है ?

गोस्वामी—दूसरी आश्चर्यकी बात यह है कि इस रसमें व्यभिचारी भावसमूह रसके साक्षात् अङ्ग नहीं माने जाते हैं। इसलिये तन्मध्यगत मरणादि भी रसके अङ्ग नहीं हैं। इनकी गणना युक्तिके द्वारा इस रसमें गुणके अन्तर्गतकी जाती है। रस ही गुणी हैं और ये गुण हैं—यह एक सिद्धान्त है।

विजय—संचारी भाव कैसे उत्पन्न होते हैं ?

गोस्वामी—आर्त्ति, विप्रिय, ईर्ष्या, विषाद, विपत्ति और अपराधसे 'निर्वेद' उत्पन्न होता है।

विजय—दैन्य कैसे उत्पन्न होता है ?

गोस्वामी—दुःख, भय और अपराधसे 'दैन्य' होता है।

विजय—ग्लानि कैसे उत्पन्न होती है ?

गोस्वामी—श्रम, आधि और रतिसे 'ग्लानि' पैदा होती है।

विजय—श्रम किससे उत्पन्न होता है ?

गोस्वामी—अधिक भ्रमण करनेसे, नृत्यसे और रतिसे 'श्रम' होता है।

विजय—मद कैसे होता है ?

गोस्वामी—मधुपानसे 'मद' होता है।

विजय—गर्व कैसे होता है ?

गोस्वामी—सौभाग्य, रूप, गुण; सर्वश्रेष्ठका आश्रय तथा इष्टवस्तु लाभसे 'गर्व' होता है।

विजय—शङ्का कैसे उत्पन्न होती है ?

गोस्वामी—चोरी, अपराध, क्रूरकर्म, विद्युत, भयंकर जानवर और डरावने शब्दोंसे 'शंका' होती है।

विजय—आवेग कैसे उत्पन्न होता है ?

गोस्वामी—प्रियदर्शन, प्रियश्रवण, अप्रियदर्शन और अप्रियश्रवणसे आवेग अर्थात् किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता उत्पन्न होती है।

विजय—उन्माद कैसे होता है ?

गोस्वामी—प्रौढ़ानन्द (महानन्द) और विरहसे 'उन्माद' होता है।

विजय—अपस्मार कैसे होता है ?

गोस्वामी—दुःखकी अधिकतासे उत्पन्न चित्त-विप्लवता ही अपस्मार है। (इसमें नायिका काँप कर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो कर गिर पड़ती है।)

विजय—व्याधि कैसे होती है ?

गोस्वामी—ज्वर आदि जैसा विकार ही 'व्याधि' है, जो चिन्ता और उद्वेग आदिसे होता है।

(क्रमशः)